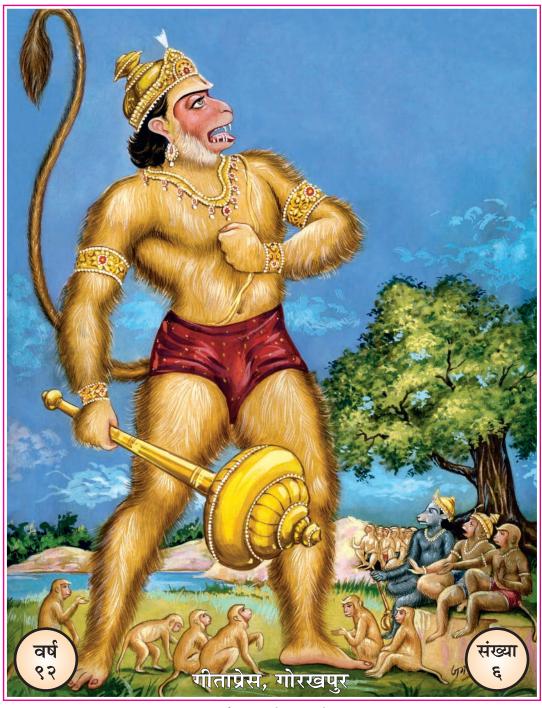
कल्याणा



पर्वताकार श्रीहनुमान्जी



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्यैकवासं शिवम्।

सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्।।

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जून २०१८ ई० पूर्ण संख्या १०९९

'झूलत राम पालने सोहैं'

सोहैं। भूरि-भाग जननी पालने जोहैं॥ मेचकताई। झलकति मंजुल झाँई ॥ मृद् बाल बिभूषन लोहित लोने । सर-सिंगार सोने॥ अधर-पानि-पद भव-सारस किलकत निरखि बिलोल खेलौना। मनहुँ बिनोद छौना॥ लरत

जन

कंज-बिलोचन। भ्राजत रंजित-अंजन भाल तिलक गोरोचन॥ लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको। चितवत चितचकोर तुलसीको॥

श्रीरामलला पालनेमें झुलते हुए शोभा पा रहे हैं और बड़भागिनी माताएँ उनकी ओर निहार रही हैं।

रही है। प्रभुके अति सुन्दर अरुणवर्ण ओठ, हाथ और चरण ऐसे जान पड़ते हैं, मानो शृंगारसरोवरमें उत्पन्न सोनेके कमल हों। खिलौनेको हिलता हुआ देखकर वे किलकारी मारते हैं, मानो छिबके छोटे-छोटे बालक

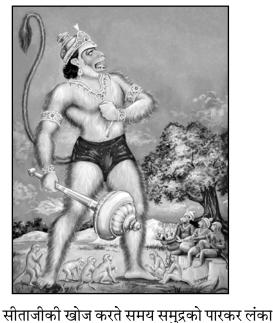
भगवान्के शरीरमें अति मृदुल और मंजुल श्यामता सुशोभित है, जिसपर बालोचित आभूषणोंकी झाँई झलक

खेल-खेलमें लड़ रहे हों। उनके कमलवत नेत्रोंमें अंजन आँजा हुआ है तथा मस्तकपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है। मनोहर मुखचन्द्रपर अति सुन्दर काजलकी बिन्दी लगी हुई है। उस मुखमयंकको तुलसीका चित्तरूप

चकोर निहार रहा है। [गीतावली]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जून २०१८ ई० विषय-सूची विषय पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय १- 'झूलत राम पालने सोहैं'...... ३ १६ - ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता (श्रीविजयकुमारजी श्रीवास्तव, एम०ए०, डी०पी०एड०, साहित्यालंकार)२९ १७- 'सबसों ऊँची प्रेम सगाई' [सूरसागर] ३० ३ - पर्वताकार श्रीहनुमानुजी [आवरणचित्र-परिचय] ६ १८- भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है ४- सत्संगकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)७ (आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना) ३१ १९– अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं (श्रीबृजमोहनजी गोयल) ..३३ ५- उदारता (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल)८ २०- हीरेकी तरह कीमती कैसे बनें (श्रीसीतारामजी गुप्ता) ३४ ६- अल्पमें सुख नहीं है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... ११ २१- भगवानुके अवतार लेनेका कारण ७- श्रीचैतन्यका महान् त्याग [प्रेरक-प्रसंग]१३ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३५ ८- गृह-दीप बुझते जा रहे हैं! (श्रीरामनाथजी 'सुमन') १४ २२- स्वामी शिवरामिकंकर योगत्रयानन्दजी [सन्त-चरित] ९- परिवर्तनशीलके लिये सुख-दु:ख क्या मानना [प्रेरक-कथा].१६ (पं० श्रीमहेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)३७ १०- ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश [साधकोंके प्रति] २३- गोमूत्रका चमत्कार (श्रीभगवतीलालजी हींगड) ३९ २४- साधनोपयोगी पत्र.....४० (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)१७ ११- लक्ष्मीका वास कहाँ है ?......१८ २५- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ्मासके व्रत-पर्व].....४२ १२- विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र [एक कल्याणप्रेमी]१९ २६ – कृपानुभूति४३ १३- जीवनमें नया परिवर्तन २७- पढ़ो, समझो और करो४४ (डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम॰ ए॰, पी॰एच॰ डी॰) २२ २८- मनन करने योग्य४७ २९- कल्याणका आगामी ९३वें वर्ष (सन् २०१९ ई०)-का १४- परम योग [कहानी] (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र')२५ १५- वृद्धावस्था (वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्तजी)२७ विशेषाङ्क 'श्रीराधामाधव-अङ्क'.....४८ चित्र-सूची ३- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी (इकरंगा) ६ ४- युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें अतिथियोंके चरण पखारते श्रीकृष्ण .. (") ५- गुरुभक्त बालक आरुणि (" ६- भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते ब्रह्माजी...... (")*3*ξ ७- पूतनाकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण.....(८- स्वामी शिवरामिकंकर योगत्रयानन्दजी (" जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ पंचवर्षीय शुल्क एकवर्षीय शुल्क जगत्पते । गौरीपति विराट् जय रमापते ॥ ₹ २५० ₹ १२५० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (₹3000) Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (₹15000) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक —राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखप्र को भेजें। Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

संख्या ६] कल्याण याद रखों—सांसारिक पदार्थ अनित्य हैं और फलतः दु:ख एवं अशान्तिको और भी बढ़ा देती है। सुखसे रहित हैं, इनपर जो आस्था करता है, इनसे जो जहाँ-कहीं निराशाका अन्धकार दिखायी दे, वहीं भगवानुके सुख-शान्तिकी आशा रखता है, उसे निराश और दुखी मंगलमय प्रकाशसे उसे तुरंत हटा दो। ही होना पड़ता है। सम्भव है, मोहवश कुछ समयके याद रखो —भगवान्के मंगलमय राज्यमें निराशा लिये सांसारिक पदार्थ सुख-शान्तिके लिये पर्याप्त जान और असफलताको स्थान नहीं है। ये तो तभी आते हैं, पड़ें, पर एक दिन अवश्य ऐसा आता है, जब वे जब हम भगवानुकी जगह भोगोंपर विश्वास करने लगते मझधारमें छोड़कर जवाब दे बैठते हैं। हैं। इस अवस्थामें हमारे दु:ख और अशान्तिकी शृंखला याद रखों — एक भगवान् ही ऐसे हैं, जो नित्य, टूटती नहीं, वरं और भी सुदृढ़ हो जाती है। इसलिये अपरिवर्तनशील, सत्, सनातन, सर्वैश्वर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान्, निराशा और असफलताका दूरसे भी दर्शन होते ही समझ और स्वभाव-सुहृद् हैं, जिनपर विश्वास करनेवालोंको लो कि तुम्हारा विश्वास भोगोंकी ओर हो गया है और कभी निराश और दुखी नहीं होना पड़ता। मनुष्यका यह तुरंत उस विश्वासको वहाँसे हटाकर भगवानुमें जोड दो। भगवद्विश्वास उसे भगवान्के अनन्त स्नेह, ज्ञान, शक्ति फिर देखो, उसी क्षण बल और उत्साहसे हृदय भर और प्रेमके उस परम उच्च स्तरपर पहुँचा देता है, जहाँ निराशा, जायगा और सफलता सामने दिखायी देगी। दु:ख और अशान्तिकी कल्पनाका भी लेश नहीं है। याद रखो-संशय, भय, क्रोध, ईर्ष्या, शोक, याद रखो—भगवान्में विश्वास रखनेवाले पुरुषपर विषाद, चिन्ता, उद्वेग आदि दोष भगवान्में विश्वासकी किसी भी सांसारिक परिस्थितिका कोई प्रभाव नहीं कमीसे ही आते हैं। भगवान्की महानता, सर्वशक्तिमत्ता और सौहार्द-प्रेममें विश्वास होते ही हृदयसे ये सारे पडता; न वह प्रिय कहानेवाले पदार्थींकी और परिस्थितियोंकी प्राप्तिसे हर्षित होता है और न अप्रिय कहानेवाले पदार्थीं दोष उसी क्षण वैसे ही लुप्त हो जाते हैं, जैसे सूर्यके और परिस्थितियोंकी प्राप्तिसे दुखी होता है। बड़े-से-उदय होते ही अन्धकार। बडा धक्का भी उसे हिला नहीं सकता। याद रखो-भगवान्के समान सदा सब बातोंको जाननेवाला, तुम्हारे दु:ख-दर्दके मूलतत्त्वको समझने *याद रखो*—भगवानुमें विश्वास करनेपर भी और उसे मिटानेकी शक्ति रखनेवाला, तुम्हारे सारे यदि तुममें कहीं अशान्ति या दु:ख दिखायी देता है तो निश्चय है कि कहीं-न-कहीं तुम्हारे विश्वास करनेमें अभावोंको जानने और उनकी सर्वांगपूर्ण पूर्ति करनेकी ही त्रुटि है। उस त्रुटिको दूर करनेके लिये विश्वासपूर्वक शक्ति रखनेवाला, पुकारते ही उत्तर देनेवाला तुम्हारा प्रभुसे प्रार्थना करो। तुम्हारी त्रुटि दूर हो जायगी और परम सुहृद्—सदा हित करनेमें तत्पर अन्य कोई भी नहीं तुम दु:ख एवं अशान्तिका समूल नाश करनेमें समर्थ है। तुम भगवानुको छोड़कर अन्य किसीमें भी जो तनिक होओगे। भी विश्वास—भरोसा रखते हो, यही तुम्हारा मोह है— याद रखों — कहीं भूल हो जानेपर जो मनुष्य उसे अज्ञान है एवं सारी विपत्तियोंका मूल है। इसे छोड़कर तुरंत सुधारमें नहीं लग जाता, उसकी भूल स्थायी बनकर अपने भगवान्को पहचानते ही तुम्हारे सारे दु:ख-दर्द स्वभावके रूपमें परिणत हो जाती है और फिर नाना सदाके लिये नष्ट हो जायँगे और तुम नित्य अनन्त सुख-प्रकारके नये-नये विघ्न उत्पन्न करके उसकी निराशाको-शान्तिको पाकर कृतार्थ हो जाओगे। 'शिव'



जाना था, परंतु सभी योद्धाओंने इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट की। तब ऋक्षपित जाम्बवान्ने हनुमान्जीको उनके बल-पराक्रमका स्मरण दिलाते हुए कहा कि हे पवनपुत्र!

तुम्हारा तो जन्म ही रामकार्यके लिये हुआ है। जाम्बवान्के वचन सुनकर श्रीहनुमान्जी परम प्रसन्न हुए और उन्होंने

मानो समस्त ब्रह्माण्डको कम्पायमान करते हुए सिंहनाद किया। उस समय उन्होंने सोनेके विशाल पर्वतके सदृश आकार धारण कर लिया था। वे वानरोंको सम्बोधितकर कहने लगे—'वानरो! मैं समुद्रको लाँघकर लंकाको भस्म

कर डालूँगा और रावणको उसके कुलसहित मारकर

जानकीजीको ले आऊँगा। यदि कहो तो रावणके गलेमें

रस्सी डालकर और लंकाको त्रिकूट-पर्वतसहित उखाड़कर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें डाल दूँ।'

हनुमान्जीके वचन सुनकर जाम्बवान्ने कहा कि हे वीरोंमें श्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही वापस लौट आओ। हे रामभक्त! तुम्हारा कल्याण हो।

बड़े-बूढ़े वानरशिरोमणियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर हनुमान्जीने अपनी पूँछको बारंबार घुमाया और

उस समय बड़ा ही उत्तम दिखायी पड़ रहा था।

वे वानरोंके बीचसे उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया। उस अवस्थामें हनुमान्जीने

बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—' आकाशमें

विचरनेवाले वायुदेवका मैं पुत्र हूँ। उनकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। उनका औरस पुत्र होनेके कारण मेरे अन्दर

भी उन्हींकी शक्ति है। अपनी भुजाओंके वेगसे मैं समुद्रको विक्षुब्ध कर सकता हूँ। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि मैं

विदेहकुमारी जानकीका दर्शन करूँगा। अत: अब तुम लोग आनन्दपूर्वक सारी चिन्ता छोड़कर ख़ुशियाँ मनाओ।'

हनुमान्जीकी बातें सुनकर वानर-सेनापति जाम्बवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई, वानरोंका शोक जाता रहा। उन्होंने कहा

कि हनुमान् ! ये सभी श्रेष्ठ वानर तुम्हारे कल्याणकी कामना

करते हैं। तुमने अपने बन्धुओंका सारा शोक नष्ट कर दिया। ऋषियोंके प्रसाद, वृद्ध वानरोंकी अनुमति तथा भगवान्

श्रीरामकी कृपासे तुम इस महासागरको सहज ही पार कर जाओ। जबतक तुम लौटकर यहाँ आओगे, तब-तक हम तुम्हारी प्रतीक्षामें एक पैरसे खड़े रहेंगे, क्योंकि हम सभी

वानरोंके प्राण इस समय तुम्हारे ही अधीन हैं।

इसके बाद छलाँग लगानेके लिये श्रीहनुमान्जी महेन्द्रपर्वतके शिखरपर पहुँच गये। उन्होंने मस्तक और ग्रीवाको ऊँचा किया और बड़े ही वेगसे शरीरको सिकोड़कर

महेन्द्रपर्वतके शिखरसे छलाँग लगा दी। कपिवर हनुमान्जीके चरणोंसे दबकर वह पर्वत काँप उठा और दो घड़ीतक लगातार डगमगाता रहा।

आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमान्जीने वानरोंसे कहा कि

वानरो! यदि मैं जनकनन्दिनी सीताजीको नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे स्वर्गमें चला जाऊँगा। यदि मुझे स्वर्गमें भी माँ सीताके दर्शन नहीं हुए तो राक्षसराज रावणको ही

बाँध लाऊँगा। ऐसा कहकर हनुमान्जी विघ्न-बाधाओंका बिना कोई विचार किये बड़े ही वेगसे दक्षिण दिशामें आगे बढ़े। हनुमान्जीके वेगसे ट्रटकर ऊपर उठे वृक्ष

उनके पीछे एक मुहूर्ततक ऐसे चले—जैसे राजाके पीछे भागमात्वाक्षांद्रमानके त्रहलकारम् इस्मार्राहान्य साहार मात्राहारे त्रुतुक्षा त्राहार स्वीता के स्वातिक स्वाति संख्या ६] सत्संगकी महिमा सत्संगकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज 'सत्संग'का पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर क्षणमात्रके सत्संगको रखा जाय तो भी एक क्षणके सत्संगके सुखके महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं-समान उन दोनोंका सुख मिलकर भी नहीं होता। बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। दूसरे नम्बरका सत्संग है-भगवानुके प्रेमी भक्तका-गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ सत्-रूप परमात्माको प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुषका संग। सत्संगके बिना हरि-कथा नहीं मिलती, हरि-तीसरे नम्बरका सत्संग है—उन उच्चकोटिके साधक कथाके बिना मोहका नाश नहीं होता और मोहका नाश हुए बिना भगवान्के चरणोंमें दृढ़ प्रेम नहीं होता। पुरुषोंका संग, जो परमात्माकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न साधारण प्रेम प्राप्त होनेके तो और भी बहुत-से कर रहे हैं। चौथे नम्बरका सत्संग उन सत्-शास्त्रोंके उपाय हैं, पर दूढ़ प्रेम मोह रहते नहीं होता और दूढ़ स्वाध्यायको कहते हैं, जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और प्रेमके बिना भगवान्की प्राप्ति नहीं होती। भगवान् सदाचारका विवरण और विवेचन है। ऐसे सत्-मिलते ही हैं प्रेमसे। श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें शास्त्रोंका सदा प्रेमपूर्वक पठन, मनन और अनुशीलन करनेसे भी सत्संगका ही लाभ प्राप्त होता है। देवताओंके प्रति भगवान् श्रीशिवजीके वचन हैं— हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ इनमें सर्वश्रेष्ठ प्रथम नम्बरका सत्संग तो भगवानुकी 'हरि सब जगह समान भावसे व्याप्त हैं और वे कृपासे ही मिलता है। उसीके लिये सारी साधनाएँ की प्रेमसे प्रकट होते हैं।' इससे यही सिद्ध होता है कि भगवान् जाती हैं, परंतु संसारमें महापुरुषोंका—महात्माओंका संग प्रेमसे मिलते हैं और प्रेम प्राप्त होता है सत्संगसे। इसलिये प्राप्त होना भी कोई साधारण बात नहीं है। वह भी बडे ही सौभाग्यसे मिलता है। मनुष्यको सत्संगके लिये विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिये। सत्पुरुषोंका सेवन न मिले तो स्वाध्याय करना चाहिये। पुन्य पुंज बिनु मिलिहिं न संता। सतसंगित संसृति कर अंता॥ सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय भी सत्संगके समान है। पुण्यपुंज यानी पूर्वके महान् शुभ संस्कारोंके संग्रहसे सत्संगके चार प्रकार हैं। पहले नम्बरके सत्संगका ही महापुरुषोंका संग मिलता है। ऐसे सत्संगका फल संसारके आवागमनसे यानी जन्म-मरणसे सर्वथा छूट अर्थ समझना चाहिये—सत्-परमात्मामें प्रेम। सत् यानी परमात्मा और संग यानी प्रेम। यही सर्वश्रेष्ठ सत्संग है। जाना है। महात्माके संगसे जैसा लाभ होता है, वैसा सत् यानी परमात्माके संग रहना अर्थात् परमात्माका लाभ संसारके किसी भी प्राणी-पदार्थसे नहीं हो सकता। संसारमें लोग पारसकी प्राप्तिको बडा लाभ मानते हैं, साक्षात् दर्शन करके भक्तका उनके साथ रहना भी सत्संग है। यही सत्पुरुषका संग है; क्योंकि सर्वश्रेष्ठ परंतु सत्संगका लाभ तो बहुत ही विलक्षण है। कविकी उक्ति है— सत्-पुरुष तो एक भगवान् ही हैं। इनके सामने स्वर्गकी तो बात ही क्या है, मुक्ति भी कोई चीज नहीं है। पारस में अरु संतमें बहुत अंतरा जान। श्रीतुलसीदासजीने इसी विशेष सत्संगकी बड़े मार्मिक वह पत्थर सोना करे, यह करे आपु समान॥ शब्दोंमें महिमा गायी है। वे कहते हैं-पारस और संतमें बहुत भेद है, पारस लोहेको सोना तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग। बना सकता है; परंतु पारस नहीं बना सकता, लेकिन संत-महात्मा पुरुष तो संग करनेवालेको अपने समान ही तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ संत-महात्मा बना देते हैं। हे तात! स्वर्ग और मुक्तिके सुखको तराजुके एक

िभाग ९२ उदारता (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) मनुष्यके व्यक्तित्वको आकर्षक बनानेवाली यदि नहीं होती। सेवाभावसे किया गया कोई भी कार्य कोई वस्तु है तो वह उदारता है। उदारता प्रेमका परिष्कृत मानसिक दुढता ले आता है। इसके कारण सभी प्रकारके रूप है। प्रेममें कभी-कभी स्वार्थभावना छिपी रहती है। वितर्क मनमें उथल-पुथल पैदा न करके शान्त हो जाते कामात्र मनुष्य अपनी प्रेयसीसे प्रेम करता है; पर जब हैं। अनुदार व्यक्ति अनेक प्रकारका आगा-पीछा सोचता उसकी प्रेम-वासनाकी तृप्ति हो जाती है, तो वह उसे है। उदार व्यक्ति इस प्रकारका आगा-पीछा नहीं सोचता। भलाईका परिणाम भला ही होता है, चाहे वह भूला देता है। जिस स्त्रीसे कामी पुरुष उसके यौवन-काल और आरोग्य-अवस्थामें प्रेम करता है, उसीको किसी व्यक्तिके प्रति क्यों न की जाय? इससे एक ओर वृद्धावस्थामें अथवा रुग्णावस्थामें तिरस्कारकी दुष्टिसे भले विचारोंका संचार उदारताके पात्रके मनमें होता है. देखने लगता है। पिताका पुत्रके प्रति प्रेम, मित्रका अपने और दूसरी ओर अपने विचार भी भले बनते हैं। मित्रके प्रति प्रेम तथा देशभक्तका अपने देशवासियोंके प्रकृतिका यह अटल नियम है कि कोई भी त्याग प्रति प्रेममें स्वार्थ-भाव छिपा रहता है। जब पिताका व्यर्थ नहीं जाता। जान-बूझकर किया गया त्याग सूक्ष्म पुत्रसे, भाईका भाईसे, मित्रका मित्रसे तथा देशभक्तका आध्यात्मिक शक्तिके रूपमें अपने ही मनमें संचित हो देशवासियोंसे किसी प्रकारका स्वार्थ-साधन नहीं होता जाता है। यह शक्ति एक प्रामिसरी नोटके समान है, जिसे तो वे अपने प्रियजनोंसे उदासीन हो जाते हैं। प्रेमका कभी भी भँजाया जा सकता है। सभी लोगोंको आधार उदारता होती है, पर जिस प्रेमका आधार उदारता भविष्यका सदा भय लगा रहता है। वे इसी चिन्तामें डूबे रहते हैं कि जब वे कुछ काम न कर सकेंगे तो अपने होती है, वह इस प्रकार नष्ट नहीं होता। उदार मनुष्य दूसरोंसे प्रेम अपने स्वार्थसाधनके हेतु नहीं करता, वरं बाल-बच्चोंको क्या खिलायेंगे अथवा अपनी आजीविका उनके कल्याणके लिये ही करता है। उदारतामें प्रेम किस प्रकार चलायेंगे। कितने ही लोगोंको अपनी शान सेवाका रूप धारण करता है। प्रेमका इस प्रकार दैवी रूप बनाये रखनेकी चिन्ताएँ सताती रहती हैं। उदार व्यक्तिको प्रकाशित होता है। इस प्रकारकी चिन्ताएँ नहीं सतातीं। जब वह गरीब भी उदार मनुष्य दूसरेके दु:खसे स्वयं दुखी होता है। रहता है, तब भी वह सुखी रहता है। उसे भावी कष्टका उसे अपने दु:ख-सुखकी उतनी चिन्ता नहीं रहती, भय रहता ही नहीं। संसारके अनुदार व्यक्ति जितने काल्पनिक दु:खोंसे दुखी रहते हैं, उतने वास्तविक जितनी दूसरेके दु:ख-सुखकी रहती है। भगवान् बुद्ध दु:खोंसे दुखी नहीं होते। प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार अपने दु:खकी निवृत्तिके हेतु संसारका त्यागकर जंगलमें नहीं गये थे वरं संसारके सभी प्राणियोंको दु:खोंसे शेक्सिपयरका यह कथन मननयोग्य है कि 'कायर पुरुष विमुक्त करनेके विचारसे राजप्रासाद छोड़ जंगलको गये मरनेके पहले ही अनेक बार मरता है और वीर पुरुष थे; ऐसे व्यक्ति ही नरश्रेष्ठ कहे जाते हैं। जीवनमें एक बार ही मरता है। वीर पुरुष काल्पनिक मौतका शिकार नहीं होता।' इसी प्रकार उदार पुरुषके उदारतासे मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंका अद्भुत विकास होता है। जो व्यक्ति अपने कमाये धनका जितना मनमें वे अशुभ विचार नहीं आते, जो सामान्य लोगोंको अधिक दान करता है, वह अपने अन्दर और धन कमा सदा पीडित किया करते हैं। सकनेका उतना ही अधिक आत्मविश्वास पैदा कर लेता यदि कोई मनुष्य अपने-आप गरीबीका अनुभव है। सच्चे उदार व्यक्तिको अपनी उदारताके लिये कभी करता है तो इसकी चिन्तासे मुक्त होनेका उपाय धन-अफसोस नहीं करना पडता। उदार व्यक्तिको आत्मभर्त्सना संचय करने लग जाना है। धन-संचयके प्रयत्नसे धनका

संख्या ६] संचय तो हो जाता है, पर मनुष्य धनकी चिन्तासे मुक्त अपने आपको दूसरोंकी सेवामें लगाये रखता है, उसके नहीं होता। वह धनवान् होकर भी निर्धन बना रहता है। आसपासके लोगोंके विचार भी उदार हो जाते हैं। स्वार्थी जब धन-संचय हो जाता है तो उसके मनमें अनेक मनुष्यकी संतान निकम्मी ही नहीं, वरं क्रूर भी होती है। प्रकारके अकारण भय होने लगते हैं। उसे भय हो जाता ऐसी संतान माता-पिताको ही कष्ट देती है। इसके है कि कहीं उसके सम्बन्धी, मित्र, पड़ोसी आदि ही प्रतिकूल उदार मनुष्यकी संतान सदा माता-पिताको उसके धनको न हड्प लें और उसके बाल-बच्चे उसके प्रसन्न रखनेके काम करती है। जब उदारताके विचार मरनेके बाद भूखों न मरें। वह अपने अनेक कल्पित शत्रु मनुष्यके स्वभावका अंग बन जाते हैं अर्थात् वे उसके उत्पन्न कर लेता है, जिनसे रक्षाके वह अनेक प्रकारके चेतन मनको ही नहीं वरं अचेतन मनको भी प्रभावित कर उपाय सोचता रहता है। धन-संचयमें अधिक लगन हो देते हैं, तो वे अपना प्रभाव छोटे बच्चों और दूसरे जानेपर उसके स्वास्थ्यका विनाश हो जाता है। उसकी सम्बन्धियोंपर भी डालते हैं। इस प्रकार हम अपने संतानकी शिक्षा भली प्रकारसे नहीं होती और वह आसपास उदारताका वातावरण बना लेते हैं और इससे निकम्मी एवं चरित्रहीन हो जाती है। इस प्रकार उसका हमारे मनमें अद्भुत मानसिक शक्तिका विकास होता है। विद्याके विषयमें कहा जाता है कि वह जितनी ही धन-संचयका प्रयास एक ओर उसकी मृत्युको समीप बुला लेता है और दूसरी ओर धनके विनाशके कारण अधिक दूसरोंको दी जाती है, उतनी ही अधिक बढ़ती भी उपस्थित कर देता है। अतएव धन-संचयका प्रयत्न है। देनेसे किसी वस्तुका बढ़ना—यह विद्याके विषयमें अन्तमें सफल न होकर विफल ही होता है। ही सत्य नहीं है, वरं धन और सम्मानके विषयमें भी सत्य जो व्यक्ति गरीबीका अनुभव करता है, उसके लिये है। युधिष्ठिर महाराजके राजसूय-यज्ञमें विदाई और अपनी गरीबीकी मानसिक स्थितिके विनाशका उपाय दानका भार दुर्योधनको दिया गया था और श्रीकृष्णने अपनेसे अधिक गरीब लोगोंकी दशापर चिन्तन करना स्वयं लोगोंके स्वागतका भार लिया था। कहा जाता है और उनके प्रति करुणाभावका अभ्यास करना ही है।

कि दुर्योधनको यह कार्य इसिलये सौंपा गया था जिससे कि वह मनमाना धन सभीको दे; पर जितना धन वह विदाईमें दूसरोंको देता था, उससे चौगुना धन तुरंत

युधिष्ठिरके खजानेमें आ जाता था। श्रीकृष्ण सभी

हो जाती हैं। उसमें आत्मिवश्वास बढ़ जाता है। इस आत्मिवश्वासके कारण उसकी मानिसक शक्ति भी बढ़ जाती है। मनुष्यके संकल्पकी सफलता उसकी मानिसक शक्तिके ऊपर निर्भर करती है। अतएव जो व्यक्ति उदार विचार रखता है, उसके संकल्प सफल होते हैं। उसका मन प्रसन्न रहता है। वह सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें शान्त बना रहता है। उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है; और वह जिस कामको हाथमें लेता है, उसको पूरा करनेमें समर्थ होता है। उसकी अकारण मृत्यु भी नहीं होती। दीर्घजीवी होनेके कारण उसकी संतान दूसरोंकी आश्रित नहीं बनती। जिस व्यक्तिके विचार उदार होते हैं और जो सदा

अपनेसे अधिक गरीब लोगोंकी धनके द्वारा सेवा करनेसे

अपनी गरीबीका भाव नष्ट हो जाता है। फिर मनुष्य अपने अभावको न कोसकर अपने आपको भाग्यवान् मानने लगता है। उसकी भविष्यकी व्यर्थ चिन्ताएँ नष्ट

भाग ९२ अतिथियोंका स्वागत करते समय उनका चरण पखारते देखेगा कि थोड़े ही कालमें उसके आसपास दूसरे थे। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपना सम्मान खोया ही प्रकारका वातावरण उत्पन्न हो गया है। उसके नहीं, वरं और भी बढ़ा लिया। जब राजसभा हुई तो एक मनमें फिर आशावादी विचार आने लगेंगे। जैसे-जैसे शिशुपालको छोड़ सभी राजाओंने श्रीकृष्णको ही सर्वोच्च उसका उदारताका अभ्यास बढ़ेगा, उसका उत्साह आसनके लिये प्रस्तावित किया। जो अपने आपको जितना भी उसी प्रकार बढ़ता जायेगा। इससे यह प्रमाणित दूसरोंके हितमें लगाता है, वह उसे उतना ही अधिक पाता होता है कि मनुष्य उदारतासे कुछ खोता नहीं, कुछ-है और जो अपने मान-अपमानकी परवा नहीं करता, वही न-कुछ प्राप्त ही करता है। संसारमें सबसे अधिक सम्मानित होता है। कितने ही लोग कहा करते हैं कि दूसरे लोग स्वार्थभाव मनमें क्षोभ उत्पन्न करता है और हमारी उदारतासे लाभ उठाते हैं। वास्तवमें वह उदारता उदारताका भाव शील उत्पन्न करता है। यदि हम उदारता ही नहीं, जिसके लिये पीछे पश्चात्ताप करना अपने जीवनकी सफलताको आन्तरिक मानसिक पडे। स्वार्थवश दिखायी गयी उदारताके पीछे ही अनुभूतियोंसे मापें तो हम उदार व्यक्तिके जीवनको इस प्रकार पश्चात्ताप होता है। सच्चे हृदयसे दिखायी ही सफल पायँगे। मनुष्यकी स्थायी सम्पत्ति धन, रूप गयी उदारता कभी भी पश्चात्तापका कारण नहीं होती, अथवा यश नहीं है; ये सभी नश्वर हैं। उसकी उसका परिणाम सदा भला ही होता है। यदि कोई स्थायी सम्पत्ति उसके विचार ही हैं। जिस व्यक्तिके व्यक्ति हमारे उदार स्वभावसे लाभ उठाकर हमें ठगता मनमें जितने अधिक शान्ति, सन्तोष और साम्यभाव है तो इससे हमारा आध्यात्मिक पतन नहीं होता, लानेवाले विचार आते हैं, वह उतना ही अधिक बल्कि लाभ ही होता है। यह आध्यात्मिक लाभ धनी है। उदार विचार मनुष्यकी वह सम्पत्ति है, जो कुछ ही कालमें भौतिक सफलताका रूप धारण कर उसके लिये आपत्तिकालमें सहायक होती है। अपने लेता है। मनुष्यका सांसारिक दिवालियापन उसके उदार विचारोंके कारण उसके लिये आपत्तिकाल आपत्तिके आध्यात्मिक दिवालियेपनका परिणाममात्र है। अतएव रूपमें आता ही नहीं, वह सभी परिस्थितियोंको अपने अपने ठगे जानेका भय व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण है। अनुकूल देखने लगता है। जिस प्रकार दो और दो मिलकर चार ही होते हैं, उदार मनुष्यके मनमें भले विचार अपने-आप तीन नहीं होते, उसी प्रकार किसी भी सद्भावनासे ही उत्पन्न होते हैं। इन भले विचारोंके कारण सभी प्रेरित कार्यका परिणाम भला ही होता है। वह कदापि प्रकार की निराशाएँ नष्ट हो जाती हैं और उदार बुरा नहीं होता। किसी भी कार्यका दो प्रकारका मनुष्य सदा उत्साहपूर्ण रहता है। उदार मनुष्य आशावादी परिणाम होता है—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। होता है। निराशावाद और अनुदारताका जिस प्रकार अपने कार्यका मुल्य बाह्य परिणामसे आँकना एक सहयोग है, उसी प्रकार उदारताका सहयोग आशावाद प्रकारकी नादानी है। शुभ कार्यका बाह्य परिणाम और उत्साहसे है। जब मनुष्य अपने-आपमें किसी कभी अनुकूल होता है, कभी प्रतिकूल; पर उसका प्रकारकी निराशाकी वृद्धि होते देखे तो उसे समझना आन्तरिक परिणाम सदा भला ही होता है। यह चाहिये कि कहीं-न-कहीं उसके विचारोंमें उदारताकी परिणाम उस कार्यके हेतुमें ही निहित है। भले उद्देश्यसे कमी हो गयी है; अतएव इसके प्रतिकारस्वरूप उसे किया गया कार्य मनमें भलाई ही उत्पन्न करता है उदार विचारोंका अभ्यास करना चाहिये। अपने समीप और अपने मनको भला बनाना, अपने विचारोंको रवनेत्राख्यांडलान्छाउँहेbrबीऽङ्गुल्का https://dec.lgg/anatthuना स्वित्यहम्प्राकृष्यि वैVE BY Avinash/Sha

अल्पमें सुख नहीं है संख्या ६] अल्पमें सुख नहीं है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।' देखते ही सकुचाकर दुबक जाती है-अपनेको छिपाने लगती है और सूर्यका प्रकाश होते-होते सर्वथा नष्ट भी हो (छा॰ उ॰ ७।२३।१) श्रुति कहती है—'अल्पमें सुख नहीं है, जो भूमा— जाती है, वैसे ही यह अज्ञानरूपी तम भी ज्ञानकी विमल महान् निरतिशय है, वहीं सुख है। 'इसीलिये जीव चिरकालसे और प्रखर ज्योतिसे ही नष्ट होता है। ज्ञानके बिना अज्ञानका सुखकी खोजमें भटकता है, परंतु कहीं तुप्त नहीं होता। हो नाश कभी सम्भव नहीं, इसलिये मनुष्य-जीवन सर्वप्रथम भी कैसे ? उसने अभीतक अल्पमें ही चक्कर काटे हैं। और सर्वोपरि कर्तव्य ज्ञानको— तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करना पूर्णके दरवाजेपर पहुँचे, तब न उसको सुखकी झाँकी नसीब है, जिसके मिलते ही सारे दु:ख-सम्पूर्ण क्लेश सदाके हो। अबतक तो उसने जिस-जिस चीजको सुखका साधन लिये शान्त हो जाते हैं। यह ज्ञान भगवत्कृपासे प्रेमके समझकर अपनाया, वह अन्तमें दु:खदायी ही साबित हुई; रूपमें परिणत होकर बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, तनमें-मनमें, इसीसे यह अशान्त हुआ जहाँ-तहाँ कराहता, कलपता, वाणीमें, बुद्धिमें, बैठनेमें, चलनेमें, सोनेमें, जागनेमें, दृष्टिमें, बिलखता दौड़ रहा है और बार-बार ठोकरें खा-खाकर अदुष्टिमें केवल एक दिव्य सत्य-चेतन आनन्द भर देता गिरता और क्लेश सहता है। है। फिर सब ओर, सर्वदा, सबमें एक दिव्य परमात्म-सत्ता यह बात नहीं कि जीव पूर्णके दरवाजेतक पहुँचनेका ही छा जाती है; छायी तो वह अब भी है, पर इस समय अधिकारी नहीं है-वह सच्चा अधिकारी है; परंतु उसने अज्ञानावृत जीव उसे प्रत्यक्ष नहीं करता, उसका अनुभव भ्रमसे पूर्णको भूलकर अपूर्णको और अनित्यको पूर्ण नहीं करता है। जब ज्ञानालोकसे अज्ञानान्धकार मिट जाता और नित्य तथा असत् और दु:खमयको ही सत् और है, जब जीव और शिवकी एकता हो जाती है, तब फिर सुखरूप मान लिया है; इसीसे वह इन्हींमें प्रीतिकर, बस, पूर्ण 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' शेष रह जाता है। वह दिशा, काल, मान आदिमें सर्वत्र व्याप्त है। यही नहीं, इन्होंमें रमकर, बार-बार मृत्युकी क्लेशकारिणी कराल मूर्तिको देख-देखकर काँपता और रोता है; फिर भी इन्हें दिशा, काल, मान आदि सब उसीमें कल्पित हैं। वह एक छोडना नहीं चाहता; यही उसका अज्ञान है, यही है, अनुपम है, अपरिमेय है, अनादि है, अनन्त है, नित्य है, अविद्याका जाल है, जिसमें फँसकर उसने अपने स्वरूप सत्य है, ज्ञान है, प्रेम है, परमानन्द है, परम-रसरूप है, और अधिकारको भुला ही दिया है। अटल है, असीम है, अज है, अकल है, अगम्य है, अनिर्देश्य है, अव्यक्त है और अनिर्वचनीय है। इसीलिये श्रृतियोंने इस अविद्याके जालको काटनेकी आवश्यकता है। वेद-शास्त्र, संत-महात्मा इसीके लिये कठोर साधनकी **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म','प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** आदि कहकर आवश्यकता बतलाते हैं; इसीके लिये साधक शास्त्र और भी उसे 'नेति-नेति' कहा है; क्योंकि किसी भी शब्दसे, संतोंका संग किया करते हैं, पर शास्त्र और संतोंके संगको किसी भी बुद्धि-वृत्तिसे उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता; तभी सफल समझना चाहिये, जब यह अविद्याका जाल उसको बतलानेके लिये जितने नाम, भाव और उदाहरण कट जाय, अज्ञानका अन्धकार नष्ट हो जाय। यह अज्ञान हैं, वे सभी अपूर्ण हैं और वस्तुत: उसका स्वरूप प्रकाशित ही हमारा परम शत्रु है, जिसने हमें एक होते हुए भी अपने नहीं कर सकते, परंतु उसका कुछ बाहरी भाव, उसकी

स्वरूप परमात्मासे विलग कर रखा है, मिथ्यामें सत्ता और मोह उत्पन्न कराकर हमें संसृति (संसार)-के प्रवाहमें डाल रखा है। जैसे अन्धकारका नाश प्रकाशसे होता है,

ता और छाया समझमें आ जाय, इसीलिये 'शाखा–चन्द्र–न्याय*'से प्रवाहमें इन शब्दोंकी कल्पना की गयी है। शब्द भी तो वही है। होता है, आरम्भमें वह शब्द ही बनकर सृष्टिका सूत्रपात करता है।

अमावस्याकी घोर काली निशा अरुणोदयकी लालिमाको इसलिये शब्दमेंसे होकर ही हम उसके स्वरूपतक पहुँच

* जैसे आकाशमें सुदूरस्थ चन्द्रमाको दिखलानेके लिये किसी पेड़की शाखाके ऊपर उसे देखनेको कहा जाता है।

भाग ९२ सकते हैं: इसीसे 'शब्द ब्रह्म'की इतनी महिमा है। मोहनकी माधुरी छविके सामने जगत्की कौन-सी वस्तु उस चरम स्थितिकी प्राप्ति जिस तत्त्वज्ञानसे होती है, जो हमें अभिसारसे अटकाकर रख सकती है, उस है, जो इस चरम स्थितिका पर्याय ही है, वह हमें कैसे रूपकी छटाका भान हो जानेपर तो तन-मन-धन और मिल सकता है? इसके लिये अल्पसे वृत्ति हटाकर लोक-परलोक सब आप ही उसपर लुट जाते हैं, ऐसी कोई चीज ही नहीं रह जाती है, जो उनके चरण-रज-उसको अनन्त और असीममें लगाना होगा—मनमें कणकी कीमतमें न दी जा सके। सब कुछ देकर भी वह महदाकांक्षा उत्पन्न करनी पड़ेगी। यह महादाकांक्षा ही मिल जाय तो भी ऐसे सस्तेमें ही मिला समझना चाहिये। वेदान्तकी 'मुमुक्षुता' है। बिना अनन्य मुमुक्षुत्वके मुक्ति नहीं मिलती, यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये। प्रियतमके दीदार-दीवाने कबीरजी पुकारते हैं-इस तनका दिवला करौं बाती मेलौं जीव। सगुण परमेश्वरकी प्राप्ति उसकी अत्यन्त उत्कण्ठासे लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥ ही सम्भव हो सकती है। हाँ, जबतक हम प्राणाधार फिर उसे दूसरी चीज भाती ही नहीं, उसके मनमें मनमोहनको सर्वोपरि सुख, प्रेम और कल्याणका अथाह और कोई बात समाती ही नहीं, उसके नेत्रोंमें और कोई असीम समुद्र मानकर उसको प्राप्त करनेकी एकमात्र छवि आती ही नहीं— इच्छापर लोक-परलोककी सारी सुखेच्छाओंको न्योछावर प्रीतम छिब नैनन बसी, पर-छिब कहाँ समाय। नहीं कर सकते, जबतक हम उन प्रियतम साँवरेके प्यारे-भरी सराय 'रहीम' लखि पथिक आप फिर जाय॥ अरुणारे चरणोंपर इस लोक और परलोकका सारा सुख दूसरा कहता है-और ऐश्वर्य लुटा नहीं देते, जबतक हम उन प्राण-तुझे देखें तो फिर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें। प्रियतमकी चरण-धूलि लाभ करनेके लिये सबका मोह ये आँखें फूट जायें गर्च इन आँखोंसे हम देखें॥ छोड़कर विरहकातर प्राणोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए संत श्रीदादूजी महाराज ऐसे विरहीकी दशाका यमुनाकूलमें कदम्ब-वृक्षकी ओर पागल होकर नहीं वर्णन करते हैं-दौड़ते, जबतक हमारे मनकी एक-एक वृत्ति—हमारी जिस घट इश्क अलाहका तिस घट लोहि न मांस। चित्त-सरिताकी एक-एक तरंग उछलती-कूदती सब दादू जियमें जक नहीं, सिसके साँसों-साँस॥ प्रकारके बन्धन-प्रतिबन्धनोंके पहाड़ों और पर्वतोंको दादू इश्क अलाहका जो प्रगटै मन आय। पददलित करती, छोड़ती और लाँघती हुई उन असीम तौ तन-मन दिल अरवाहका सब परदा जलि जाय॥ आनन्दसमुद्र श्यामसुन्दरमें मिलकर एकत्वको प्राप्त करनेके जहँ बिरहा तहँ और क्या जप-तप साधन योग। लिये एक तारसे, एक चालसे, अनन्यभावसे और तीव्र दादू बिरहा लै रहै, छाँड़ि सकल रस-भोग॥ गतिसे बहना प्रारम्भ नहीं करती, तबतक हमें मोहन कैसे दादू तड़फै पीड़ सौं बिरही जन तेरा। मिल सकते हैं? तबतक कैसे हम दावेके साथ कह सिसकै साँई कारणै मिलु साहेब मेरा॥ सकते हैं कि हम पुकारते हैं, पर वे बोलते नहीं? हम जिस घट बिरहा रामका उस नींद न आवै। बुलाते हैं पर वे आते नहीं ? हम चाहते हैं पर वे चाहते दादू तड़फै बिरहनी, उस पीड़ जगावे॥ नहीं? जिस दिन उनकी प्यारी चाह जगतुकी सारी बिरह-बियोग न सिंह सकौं मोपैं सह्यो न जाय। चाहोंको खो बैठेगी, जिस दिन हमारे प्राण व्याकुलतासे कोई कहाँ मेरे पीवकौं दरस दिखावै आय॥ उन्हें पुकार उठेंगे—उस दिन हमसे बोले बिना, मिले बिरह-बियोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोहिं। बिना, हमें हृदयसे लगाये बिना उनसे नहीं रहा जायगा। कोई कहाँ मेरे पीवकौ कब मुख देखौ तोहिं॥ सच बात तो यह है कि वे तो हमसे मिलना चाहते हैं; बिरह-बियोग न सिंह सकौं तन-मन धरैं न धीर। परंतु हमें उनकी अपेक्षा नहीं है! उन प्यारे दिलदार कोई कही मेरे पीवकौं मेटै मेरी पीर॥

संख्या ६] श्रीचैतन्यका महान् त्याग इस विरहकी दशामें जब प्राण-प्रिय तान-तानकर छिपकर कतार्थ हो जाता है। बस. यह विरह-ताप. यह अनन्य प्रेम ही उस पूर्ण प्रियतमके मिलनेका सर्वोत्तम हृदयमें बाण मराता है, तब तो कुछ विचित्र ही अवस्था साधन है। स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं-हो जाती है। अन्तमें होता यह है कि बाण मारनेवाला ही रह जाता है, जिसके बाण लगता है, उसकी पृथक् भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। सत्ता ही मिट जाती है। इसी दृश्यकी चाहना करते हुए ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ महात्मा दादू पुकारते हैं-(गीता ११।५४) 'परम तपस्वी अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा ही मैं दादू मारै प्रेम सौं बेधै साध सुजाण। तत्त्वसे जाना जा सकता हुँ, प्रत्यक्ष दर्शन दे सकता हुँ मारणहारे कौं मिलै, दादु बिरही-बाण॥ और भक्तका मुझमें प्रवेश हो सकता है।' मारणहारा रहि गया जेहि लागे सो नाहिं। बस, यह प्रभु-मिलन ही पूर्णकी प्राप्ति है, यही कबहुँ सो दिन होयगो, यह मेरे मन माहिं॥ विरह-बाण लगनेपर 'वह दिन' आते देर नहीं सुखकी पराकाष्ठा है। अल्पको छोडकर इसी महान्-पूर्णके लिये, पूर्ण प्रयत्न करना मनुष्यका परम लगती, जब भक्त उस प्राणाधार विश्वाधार विश्वात्मा मुरलीमनोहरको जानकर, देखकर और उसके हृदयमें धर्म है। ——— श्रीचैतन्यका महान् त्याग प्रेरक-प्रसंग— श्रीचैतन्य महाप्रभु उन दिनों नवद्वीपमें निमाईके नामसे ही जाने जाते थे। उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। व्याकरणकी शिक्षा समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्रका महान् अध्ययन किया और उसपर एक ग्रन्थ भी लिख रहे थे। उनके सहपाठी पं० श्रीरघुनाथजी उन्हीं दिनों न्यायपर अपना 'दीधिति' नामक ग्रन्थ लिख रहे थे, जो इस विषयका प्रख्यात ग्रन्थ माना जाता है। पं० श्रीरघुनाथजीको पता लगा कि निमाई भी न्यायपर कोई ग्रन्थ लिख रहे हैं। उन्होंने उस ग्रन्थको देखनेकी इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन निमाई अपना ग्रन्थ साथ ले आये और पाठशालाके मार्गमें जब दोनों साथी नौकापर बैठे तब वहीं निमाई अपना ग्रन्थ सुनाने लगे। उस ग्रन्थको सुननेसे रघुनाथ पण्डितको बड़ा दुःख हुआ। उनके नेत्रोंसे आँसुकी बूँदें टपकने लगीं। पढ़ते-पढ़ते निमाईने बीचमें सिर उठाया और रघुनाथको रोते देखा तो आश्चर्यसे बोले—'भैया! तुम रो क्यों रहे हो?'

रघुनाथने सरल भावसे कहा—'मैं इस अभिलाषासे एक ग्रन्थ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्रका सर्वश्लेष्ठ ग्रन्थ माना जाय; किंतु मेरी आशा नष्ट हो गयी। तुम्हारे इस ग्रन्थके सम्मुख मेरे ग्रन्थको पूछेगा कौन?'

'बस, इतनी-सी बातके लिये आप इतने संतप्त हो रहे हैं!' निमाई तो बालकोंके समान खुलकर हँस पड़े। 'बहुत बुरी है यह पुस्तक, जिसने मेरे मित्रको इतना कष्ट दिया!' रघुनाथ कुछ समझें, इससे पूर्व तो

निमाईने अपने ग्रन्थको उठाकर गंगाजीमें बहा दिया। उसके पन्ने भगवती भागीरथीकी लहरोंपर बिखरकर तम्रेने लगे।

तैरने लगे। रघुनाथके मुखसे दो क्षण तो एक शब्द भी नहीं निकला और फिर वे निमाईके पैरोंपर गिरनेको झुक पड़े; किंतु निमाईकी विशाल भुजाओंने उन्हें रोककर हृदयसे लगा लिया था।

गृह-दीप बुझते जा रहे हैं! (श्रीरामनाथजी 'सुमन') हमारे शास्त्रोंने गृहस्थाश्रमको धन्य कहा है-धन्य पग-पगपर निराश और अप्रतिभ होता है-खीझता है,

जब उसके साहसके पाँव उखड़ जाते हैं और आकांक्षाएँ

इसलिये कि वही आश्रम धर्मकी रीढ़ था। उससे अन्य तीनों आश्रमोंको बल मिलता था। वह व्यक्तिमें समष्टि-दम तोड़ देती हैं, तब कुछ ही क्षणके लिये सही, जहाँ

धर्मकी प्रयोगशाला था। वह सभ्यता और संस्कृतिका मेरुदण्ड था। वह एक ऐसी इकाई था, जिसके गर्भमें

अगणित दहाइयाँ अँगडाई लेती थीं। वह एक ऐसा दीपक था, जिसमें स्नेह स्वयं जलकर दूसरोंको प्रकाश

देता था। मानव-संस्कारोंकी प्रथम रंगस्थली। परंतु आज

वह विवर्ण है, अपनेंमें खोया और लुटा हुआ। अनेक मतों, वादों और सिद्धान्तोंके होते हुए भी

एक तथ्य हम चतुर्दिक् देख सकते हैं कि आज भी संसारका विशाल बहुमत विवाहित जीवन व्यतीत करनेवाला

है। असाधारण वृत्तिके बुरे-भले आदिमयोंको छोड़कर विचार करें तो ज्ञात होगा कि यह मानव-जीवनका एक

सामान्य और प्राय: निश्चित-सा कार्य बन गया है। यह जीवनका एक सत्य है। क्यों है यह जीवनका सत्य? इसलिये कि वह

जीवनका कवच है। वह हमें अनेक बुराइयोंसे बचा लेता है, जीवनके युद्धमें हमें शक्ति देता है-मेरा प्रयोजन यह है कि बचा सकता है, शक्ति दे सकता है।

जब हमारा मन अगणित उत्तेजनाओंसे थक जाता है, तब वह हमें थपिकयाँ देकर शान्त कर देता है। जब हम वासनाओंसे प्रकम्पित होते हैं, यह हमारे चरण

पकड़ लेता है। इसके कारण हजारों अकर्मण्य जीवनके वीर सैनिक बन गये हैं, लाखों मानसिक संतुलन खोनेसे

बच गये हैं। इसने उच्छृंखल यौन अतिचारोंपर अंकुश रखा है, इसने जीवनके लुब्धक मिथ्याचारोंमें डूबनेसे

हमें रोक लिया है। आजके संघर्षसे भरे जीवनमें, जब हमारे चतुर्दिक्

ईर्ष्या-द्वेष-दम्भका बवंडर उठ रहा है, जब हमारी सूनी कातर आँखें करुणाके सुखद स्पर्शके लिये व्याकुल हैं,

जब मित्रोंकी पहचान करना कठिन हो रहा है, जब

तप्त बालुका-भूमिमें शीतल जलकी फुहार मिल जाती है, दो मधुर बोल और तुम्हारे दु:ख-कष्ट एवं चिन्ताको तुमसे छीन लेनेकी उत्कण्ठा जहाँ है, वह घर ही है।

अपनी समस्त विवशताओंके साथ भी, यान्त्रिक सभ्यता, संघर्ष और आर्थिक दुष्प्रेरणाओंसे दिन-दिन टूटते घर

आज भी पृथ्वीपर स्वर्ग हैं।

जीवन-युद्धमें थके, संध्याके समय लौटते हुए अपनेको देखो। आज काम ज्यादा करना पड़ा, दम

मारनेकी फुर्सत न मिली, फाइलमें एक गलती हो गयी, साहबकी डाँट पड़ी, मन खट्टा हो गया। कारखानेमें

आज साथीके न आनेसे काम इतना करना पड़ा कि शरीर चूर है; दुकानपर आज सेठसे कहा-सुनी हो गयी है, या आज शरीर थका-थका-सा और मन बोझिल है। पग रास्ता नहीं काटते, लगता है, रास्ता ही पगोंको काटता

लौट रहे हो घरकी ओर। और एक नारी, जिसके जीवनकी समस्त उमंगें,

होकर भी, द्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षामें दो अबोले, तुम्हारे स्नेहमें उमड़े, नयन बिछाये खड़ी है। तुम्हारे दुग् मिलते हैं, और हृदय, टूटता हृदय फिर उभरता है; निराशापर

मौन प्यारकी एक थपकी जीवनको टूटनेसे बचा लेती है। जब दुनियामें और कोई तुम्हारा नहीं है, तब भी वह

है-यह भावना पुरुषमें विद्युत्की भाँति कौंधकर उसे पुनः शक्तिसे पूरित कर देती है। कोई तुम्हारी राह देखनेवाला है, तुम्हीमें समाया हुआ—यह भावना जीवनके

हो; साहस और उमंग सो गये; चित्त भ्रान्त, अशान्त है; दिल बैठा-बैठा-सा लगता है। परंतु लौटना है, और

समस्त आशाएँ तुममें ही सिमटकर रह गयी हैं-तुम्हारी थकावटको अनुभव करनेवाली, स्वयं गृहकार्योंमें थकी

जीखिक्रीयांडामकीisspredisesperalettas://desp.sap/dhaस्मक्त laddAP इत्प्रेशकी क्रीति रहा ध्रीति शंग उन्निक्रिक

संख्या ६]	गृह-दीप बुझ	गते जा रहे हैं! १५

आगे बढ़ानेकी प्रेरणासे मन-प्राण पूरित	हो उठते हैं।	कीमती और रंगीन पात्रोंमें तुम्हें लुभा ले, क्षणभरको अचेत
×	×	कर दे; किंतु शीतल, सुखद और बेदाम जलके बिना—
तुम कहोगे, इस भावुकताके वर्णन	नसे दुनिया नहीं	जिसे ठीक ही देववाणीमें 'जीवन' कहा गया है—आदमी
चलती; यह कविताकी भाषा है, जीवनके	कठोर तथ्योंकी	कब जी पाया है ? वही अमृत, वही जीवन, जिसकी कुछ
नहीं। मैं मानता हूँ, गृहस्थ-जीवनमें भी शत	–शत वृश्चिक–	शीतल बूँदोंके छींटे बेहोश मानवको चैतन्य कर देते हैं,
दंशोंवाली जिह्वा मिलती है; फूलोंका कले	जा मसलनेवाले	तुम्हें यहाँ मिलेगा। किंतु इसके लिये जरा गहराईमें पैठना
तुषारपात भी वहाँ होते हैं; जब हम वर्षाक	ो आशा कर रहे	होगा। अरे, आँखें बन्द करके चलनेवाले मानव! प्रेमकी
होते हैं तो सूखा पड़ जाता है और जब ह	लकी चाँदनीमें	योगिनी, सतत आत्मदानसे विश्वको ऊर्जस्वल करनेवाली,
मन विभोर हो रहा होता है, तब भयान	क कड़कड़ाहट	अन्नपूर्णा–सी इस गृहकी नारीको देख। महामायाका,
होती है, उल्कापात होते हैं और तूफानोंसे ज	गिवनका क्षितिज	जगदम्बाका घर-घरमें प्राप्त अवतरण!
भर जाता है। परंतु ये बातें तो गृहस्थ-जी	वनके बाहर भी	इसीलिये कह रहा था कि गृहस्थ–जीवन पृथ्वीका
होती हैं। अविवाहित सम्बन्धोंमें इनका अनुष	गात कुछ अधिक	स्वर्ग है। किंतु आज? वह नरक बनता जा रहा है।
ही होता है। वहाँ भी कल्पनाओं और स्वप	नोंकी छाती फट	क्यों ?
जाती है और गहरी खाइयाँ दिलोंके बीच प		इसलिये कि पति और पत्नी, पुरुष और स्त्री, जो
आती हैं। सामान्य विवाहित गृहजीवनमें र्	ऐसे आकस्मिक	मिलकर घरका निर्माण करते हैं, आजके भोगप्रधान जीवनकी
उल्कापात कम ही होते हैं।		ऑधियोंमें पड़कर असाधारणरूपसे चंचल और विकृत
गृहजीवनका अपना सिरदर्द भी उ		होते जा रहे हैं। पुरुष है कि नारीके वास्तविक महत्त्वको,
औसत मानवी भावनाओं एवं प्रेरणाओ	ंका जीवन है;	उसके विराट् रूपको भूल गया है। वह उस वरदानका
यह ब्यौरेका, तफसीलका जीवन है।	यह सब मैं	रहस्य समझनेकी मानसिक स्थितिमें नहीं है, जो नारी
मानता हूँ; किंतु यही उसका सौन्दर्य	भी है—यह	अपने साथ उसके लिये, उसकी संततिके लिये लाती है।
सरलता, यह हृदयकी भाषा, जहाँ घ्	•	वह उसे केवल शरीर-तुष्टिका साधन बनाता जा रहा है।
अटपटे, तरल शब्द सीधे दिलसे ओठोंप	,	उसके पास दृष्टि नहीं, प्रेरणा नहीं और शायद समय एवं
अगणित प्रसाधनोंका माध्यम जहाँ उ		मन:स्थिति भी नहीं कि गहरी सहानुभूतियों एवं निजत्वसे
लोक नहीं लेता। तुम्हारी गरीबी यहाँ	घृणास्पद नहीं	भरे उसके विराट् अन्तर्मनको स्पर्श करे; रससे भरे मनको,
है; तुम्हारा धन नहीं, धनी यहाँ काम्य	है; कोरे हाथ	जो सहानुभूतिके एक स्पर्शसे द्रवित हो उठता है और
नहीं, अबोली भावनाएँ, स्नेहके शत-शत	अदृश्य वरदान	पारिजातकी भाँति अपने जीवन-पुष्पको चरणोंमें उँडेल
आँखोंमें लिये अन्नपूर्णा यहाँ तुम्हारा	स्वागत करती	देता है। इसका परिणाम यह है कि शरीरकी तुष्टि भी नहीं
है। चांचल्य, विच्छिलता, मृगजलकी भ्रग	मपूर्ण प्रलुब्धता,	हो पाती। यान्त्रिक मिलनमात्र होकर रह जाता है। दोनों
रहस्यमयी क्षणिक मादकता यहाँ नहीं	है।	अतृप्त, खोये, खीझ–से भरे रह जाते हैं।
मैं जानता हूँ आजका मानव मादव		उधर नारी अन्तरमें पुरुषके प्रति प्राकृतिक जातीय
संघर्षमें मदिरा उसे खींचती है और उ	भपने आँचलके	संवेदनाओंसे भरी, किंतु परम्परासे भयत्रस्त, शिक्षासे या तो
चंचल आन्दोलनोंसे थपकियाँ देकर उसे सु	ुला देती है। तुम	गतानुगतिक अथवा फिर मिथ्या दम्भ और विद्वेषसे विकृत
सोते हो, क्षणभरके लिये अपनेको भूल जा	ते हो। परंतु क्या	अनिश्चितता और शंकाओंके झंझावातमें अस्थिर है।
यह जीवनके प्रश्नों और समस्याओंका स	माधान है ? क्या	आत्मदानकी प्रेरणा अशक्त हो गयी है और पानेकी आकांक्षा
यह उनसे और इसीलिये अपनेसे भी भ	गागना नहीं है ?	बढ़ी हुई है। स्वभावत: आजके भयंकर जीवन-संघर्षमें,
मदिरा अपनी मूल्यवान् वेषभूषामें, की	मती टेबुलोंपर,	आर्थिक अवपीड़नके इस युगमें उसमें निराशाएँ उत्पन्न

भाग ९२ होती हैं, धक्के लगते हैं; उमंगोंके तन्तु टूट जाते हैं, सपने दुष्टिका अभाव है। जीवनमें नारी और पुरुष आज जिन मूल्योंको अपना रहे हैं, उनसे सुविधाओंमें वृद्धि हो अस्थिर हो जाते हैं। वह पतिके प्रति अनुरागसे भरी, उसमें खोयी न होनेके कारण मिलकर भी अलग रह जाती है, सकती है, किंतु उनसे आनन्द नहीं खरीदा जा सकता। एक होनेपर भी उसमें द्विधा है। यह जीवनसे जीवनका दु:ख तो यह है कि शताब्दियोंकी अपनी साधनामें नारीने जो दीप गृह-प्रकोष्ठमें जलाये थे—तिमिरावरणको

चुनौती देनेवाले दीपक, तुलसीके चौरेपर रखनेके लिये

अंचलकी छायामें ले जाये जा रहे दीपक, देवार्चनके

पानीमें, दु:खमें, सुखमें आमरण जलनेवाले स्नेहके

दीपक बुझते जा रहे हैं-एक-एक करके बुझते जा रहे

हैं। मरणका अन्धकार जीवनको निगलता जा रहा है

और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं; क्षितिजपर आँधियाँ

मिलन नहीं, जीवन-खण्डोंका मिलन है। कुछ खण्ड

मिलते हैं, कुछ ज्यों-के-त्यों स्तब्ध पड़े रह जाते हैं और कुछ प्रतिकुल दिशाओंमें अग्रसर हो जाते हैं।

और जब हमारे पास प्रेमकी वह पँजी न हो. जो लिये जल रहे घृतके दीपक और सबके ऊपर आँधीमें,

जीवनकी सब कठिनाइयोंको चुनौती देनेकी शक्ति रखती है, तब छोटी-छोटी बातें भी बडी होने लगती हैं। जरा-

सा उलाहना, जरा-सा आदिष्ट स्वर तीर-सा कलेजेमें लगता है। बातोंमें बातें पैदा होती हैं, मन खराब होता

है और फिर तो व्यथाओंकी दुनिया अपने-आप बनने

लगती है। जीवन नरक हो जाता है। क्या यह नरक स्वर्ग नहीं बन सकता? थोडे संयम.

थोडी समझदारीसे सब हो सकता है। यदि दोनों एक-

उमडती आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं, पतनकी खाइयाँ मुँह बाये हमारी ओर दौडी आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं-गृहके दीपक,

स्नेहके दीपक, निष्ठाके दीपक, श्रद्धाके दीपक, अर्चनाके

दूसरेके लिये जीना सीखें तो सब हो सकता है। केवल

दीपक, साधना और शीलके दीपक!

पिरवर्तनशीलके लिये सुख-दुःख क्या मानना

एक सम्पन्न घरके लड़केको डाकुओंने पकड़ लिया और अरबके एक निर्दय व्यक्तिके हाथ बेच दिया।

निष्ठुर अरब उस लड़केसे बहुत अधिक परिश्रम लेता था और फिर भी उसे झिड़कता और पीटता रहता

था। पेटभर भोजन भी उस लड़केको नहीं मिलता था। एक व्यापारी घूमता हुआ उस नगरमें पहुँचा। वह

लड़केको पहचानता था। उसने लड़केसे पूछा—'आजकल तुम्हें बहुत क्लेश है?' लड़का बोला—'जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये क्लेश

क्या मानना।' वर्ष बीतते गये। अरब वृद्ध हुआ, मर गया। अरबकी स्त्री और अबोध बालक निराधार हो गये। उनका

वह गुलाम अब युवक हो गया था। मरते समय अरबने उसे अपने दासत्वसे मुक्त कर दिया था। वही अब स्वयं उपार्जन करके अरबकी पत्नी और पुत्रका भी भरण-पोषण करता था। वह व्यापारी फिर उस नगरमें

आया और युवकसे उसने पूछा—'अब क्या दशा है?' युवक बोला—'जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी। उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये सुख

क्या मानना और दुःख भी क्यों मानना।' युवक उन्नित करता गया। वह अपने कबीलेका सरदार हुआ और धीरे-धीरे उस प्रदेशका राजा हो

गया। व्यापारी फिर उस नगरमें आया तो राजासे मिले बिना जा नहीं सका। मिलनेपर उसने कहा—'श्रीमान्! आपके इस वैभवके लिये धन्यवाद।' राजाने शान्त स्थिर भावसे कहा—'भाई! जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील

अवस्थाके लिये उल्लास क्या और खेद भी क्यों।'

संख्या ६] ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश साधकोंके प्रति— ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) जैसे दहकती हुई अग्नि सम्पूर्ण काष्ठोंको जलाकर नीतिमें आता है— राख (भस्ममय) कर देती है, ऐसे ही 'ज्ञानाग्नि' शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्। (ज्ञानरूपी अग्नि) अनन्त जन्मोंके शुभाशुभ कर्मोंको लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्॥ जलाकर भस्म कर देती हैं— सौ काम छोड़कर मनुष्यको चाहिये कि भोजन कर ले। हजार काम छोड़कर स्नान कर लेना चाहिये और यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। दान देनेका सुअवसर आ जाय तो दूसरे लाखों काम ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ बिगडते हों तो भी उनकी परवा न करके दानका कार्य (गीता ४।३७) 'सर्व' शब्दका अर्थ है, पूर्ण रीतिसे। काष्ठके जल प्रथम करे। अन्तमें कहा कि करोड़ों काम बिगड़ रहे हों, जानेपर राख और कोयला रह जाते हैं; परंतु कर्मींके भस्म तो कोई बात नहीं, परंतु भगवान्का स्मरण पहले होना होनेपर उनका कुछ भी शेष नहीं रह जाता। यह ज्ञानका चाहिये; क्योंकि संसारका काम सुधर गया तो भी बिगड माहात्म्य है। इससे सिद्ध है कि महान् पापी भी उस गया और बिगड़ गया तो भी बिगड़ गया। कारण कि तत्त्वको पा सकते हैं और उनके सम्पूर्ण पापोंका नाश अन्तमें बिगड़नेवाला ही है और अपने साथ रहनेवाला हो जाता है। फिर साधकको उस तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय, भी नहीं है। भजनके समान दूसरा कोई काम नहीं है। इसमें सन्देह करना ही भूल है, अर्थात् उस तत्त्वकी शास्त्र और संतोंके वचन तो बहुत श्रेष्ठ होते हैं, परंतु प्राप्तिके विषयमें हमें कभी निराश नहीं होना चाहिये। नीतिशास्त्र भी कहते हैं कि सबसे पहले करनेका कार्य इस सम्बन्धमें गीता एक विलक्षण बात कहती है हरिभजन है। भजनके बाद समय मिलेगा तो दूसरे कामोंके विषयमें विचार करेंगे। तत्त्वप्राप्तिका काम तो कि 'केवल उस तत्त्वको प्राप्त करना है'(९।३०)— ऐसा पक्का निश्चय करते ही उसी क्षण मनुष्य धर्मात्मा कर ही लेना है। जैसे भी, जब भी अर्थात् चाहे दु:ख, बन जाता है और महान् शान्तिको प्राप्त हो जाता है— संताप, जलन, तिरस्कार, अपमान, निन्दा हो और चाहे दरिद्रता, विपत्ति आती हो-ये सब स्वीकार हैं; परंतु उस 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। तत्त्वप्राप्तिमें देरी न होनी चाहिये। यदि मनुष्य भगवान्के (गीता ९।३१) 'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा लिये पूरी शक्ति लगा देता है तो भगवान् मनुष्यके लिये रहनेवाली परमशान्तिको प्राप्त होता है।' पूरी शक्ति लगा देते हैं। फिर देरीका क्या काम? क्योंकि संसारमें अधिक लोगोंकी धारणा यह रहती है कि भगवत्भक्ति अपार-अनन्त है। श्रीभगवान् कहते हैं-हमें तो संसारके कार्य करने हैं। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हैं, ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। जो कहते हैं कि हमें संसारके कामके साथ-साथ भजन (गीता ४। ११) भी करना है। उनके मनमें यह बात बसी रहती है कि 'जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं भी उसको घरका काम है, कुटुम्बका काम है, यह काम है, वह उसी प्रकार भजता हूँ 'फिर भी प्राणी पूरी शक्ति लगाते काम है। ऐसे व्यक्ति भजन-सत्संगको गौण मानते हैं और नहीं। जीव सभी प्रकारकी साधन-सामग्रीसे सम्पन्न है, संसारका काम 'करना है ही'—आवश्यक मानते हैं। तत्त्वप्राप्तिका अधिकार भी पूरा है और उसकी प्राप्तिके वास्तवमें संसारके कार्यको अनिवार्य मानना सर्वथा भ्रम, लिये सभी सबल हैं, जबिक सांसारिक वस्तुओंकी धोखा और विश्वासघात है। भगवान्ने मानव-शरीर दिया प्राप्तिके लिये उपर्युक्त नियम नहीं है; क्योंकि संसारकी है कल्याण करनेके लिये और यह लगाया गया संग्रह वस्तुएँ सबको पूरी नहीं मिली हैं। अगर किन्हींको कुछ एवं भोगोंमें। इस प्रकार भगवान्के साथ भी हम मानव मिली भी हैं तो वे थोड़े लोग हैं। किंतु भगवान् सबको (मनस्वी) होकर भी कैसा विश्वासघात कर रहे हैं! प्राप्तव्य हैं—

प्राप्तिमें अन्य किसीको हेतु मानना कि गुरु नहीं मिलता, बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥ 'बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर उपाय नहीं मिलता, भगवान्की कृपा नहीं मिलती—ये सब मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।' सब लोग लखपति, व्यर्थकी बातें हैं। अच्छे-से-अच्छे गुरु आज भी तैयार हैं। भगवान्की कृपा तो सदैव अखण्डरूपसे है ही। प्रकृति

भाग ९२

के-सब सहायक होंगे। इनमें भी दु:ख देनेवाले इस कार्यमें

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

ही नहीं, अत: उसमें मुख्य अभाव ही है। भाव (परमात्मा)

अनुभवमें न आयें तो भी है और अनुभवमें आ जायँ तो

यदि हम सत्-पदार्थको प्राप्त नहीं कर सकते तो

अभाव कहते हैं (संसारके पदार्थरूपको), जो हैं

प्रथम श्रेणीके सहायक होंगे।

असत्को क्या प्राप्त करेंगे? क्योंकि—

करोड़पित नहीं बन सकते। अरबपित तो बहुत थोड़े ही बनेंगे; किंतु आध्यात्मिक क्षेत्रमें सब-के-सब 'सर्वतः सहायता देनेको तैयार है। आपका दृढ़ निश्चय होनेपर पति' बनेंगे। कोई किंचिन्मात्र भी कम नहीं रहेगा। कोई बाधा देनेवाला नहीं है। उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माजी, शुकदेवजी, शंकरजी, वसिष्ठजी, सनकादिक वैर रखनेवाले, प्रेम रखनेवाले और उदासीन रहनेवाले सब-

और नारदादिकोंको जो ज्ञान प्राप्त है, वही ज्ञान आज

भी हमें प्राप्त हो सकता है। ऐसा उत्तम अवसर पाकर भी हम उसे व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं, यही बडा धोखा है। हमारा यह कैसा अविवेक है ? जो नरतन पाकर प्रभुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील

नहीं होते वे आत्मघाती, मन्दमति, महामृढ हैं। सो कृत निंदक मंदमित आत्माहन गित जाइ॥ इसलिये उस तत्त्वको प्राप्त करना है; और करना है

इच्छामात्रसे। चाहे जो हो, उसको प्राप्त करना ही है।

भी है। केवल सत्के अनुभवकी जिज्ञासा एवं असत्में ऐसी पक्की इच्छामात्रकी आवश्यकता है। उस सत्तत्त्वकी सुख-भोग-बुद्धिका त्याग करना है।

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

एक सेठ रात्रिमें सो रहे थे। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही हैं—'सेठ! अब तेरा पृण्य समाप्त हो गया है, इसलिये तेरे घरसे मैं थोड़े दिनोंमें चली जाऊँगी। तुझे मुझसे जो माँगना हो, वह माँग ले।'

सेठने कहा—'कल सबेरे अपने कुटुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो माँगना होगा, माँग लूँगा।' सबेरा हुआ। सेठने स्वप्नकी बात कही। परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरा-मोती आदि मॉॅंगनेको कहा,

किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्न माँगनेके पक्षमें था और कोई वाहन या भवन। सबसे अन्तमें सेठकी छोटी बहू बोली—'पिताजी! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे?

आप इन्हें मॉॅंगेंगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं। आप तो मॉॅंगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे। कुटुम्बमें सब लोगोंमें परस्पर प्रीति रहेगी तो विपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जायँगे।'

सेठको छोटी बहुकी बात पसन्द आयी। दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए। सेठने प्रार्थना की—'देवि! आप जाना ही चाहती हैं तो प्रसन्नतासे जायँ; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुटुम्बियोंमें परस्पर

प्रेम बना रहे।' लक्ष्मीजी बोलीं—'सेठ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बाँध ही लिया। जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर प्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ।'

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्वानं सुसंस्कृतम् । अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्न वसाम्यहम्॥ देवी लक्ष्मीने इन्द्रसे कहा है—'इन्द्र! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सभ्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध

ॱॴॏऄॖ॔ॴऄऀ॔॔ज़ॾॕॏ॔ॾऄॏख़ॾॾॡऀॿ॓॔ॸॕॹॹॏॎ॒॔॔ऄॕॾ॓ढ़ॱऄॗऀ॔ॹख़ऀऄऀॿॸॕॹऻऀॿॱॕॕ॔ॱ॔॔॔MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र संख्या ६] विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र [एक कल्याणप्रेमी] विद्यासे अमृत-तत्त्वकी प्राप्ति होती है—'विद्ययाऽ-इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्। मृतमश्नुते।' (शुक्लयजु० ४०।१४, ईशोप० १।११, तेनास्य क्षरित प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्॥ मनु० १२।१०३)। इसीलिये विद्याका मुख्य फल (मनु० २। ९९) प्राचीन कालमें अधिकांश विद्यार्थियोंमें संयमादि विमुक्ति—अज्ञानसे मुक्ति है। कहा भी गया है—'सा गुण विद्यमान रहते थे। इसी कारण उस समयके विद्यार्थी विद्या या विमुक्तये' (विष्णुपुराण १।१९।४१), किंतु मेधावी होते थे। उस समय संयतेन्द्रियता विद्यार्थियोंमें विद्या-प्राप्तिके लिये भले ही वह लौकिक विद्या ही क्यों न हो, शिक्षा-संस्थाओंमें प्रवेश प्राप्त कर लेनामात्र ही सहज ही पायी जाती थी। विद्याध्ययनके समय वे लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते थे। खान-पानका पूरा संयम रहता पर्याप्त नहीं है; उसके लिये महापुरुषोंद्वारा निर्दिष्ट कुछ विशेष नियमोंका पालन करना भी आवश्यक है। विद्या-था। मनको चंचल करनेवाले पदार्थींसे बिलकुल परहेज प्राप्तिके तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं—श्रद्धा, तत्परता, किया जाता था। विद्यार्थियोंका जीवन त्यागमय होता एवं संयतेन्द्रियता। विद्यार्थियोंके लिये ये तीनों सूत्र था। उनका जीवन श्रद्धामय होता था और उनका लक्ष्य सफलताके परम साधन हैं। इन साधनोंको अपनानेपर विशुद्ध ज्ञान होता था। भगवद्भक्त गुरुजन विद्यार्थियोंमें विद्यार्थियोंके हृदयमें विद्या स्वयं स्फुरित होती है। पहला दृढ़ता लानेके लिये उनकी परीक्षा लिया करते थे और सूत्र है—श्रद्धा। गुरुके प्रति पूज्यता एवं उत्तमताका भाव कभी-कभी उनके साथ कठोरता भी बरतते थे, परंतु उन एवं विश्वास होना ही 'श्रद्धा' है। गुरुके प्रति विद्यार्थीका दिनों आस्तिक विद्यार्थीवर्ग सहनशील होता था, कठोरताकी श्रद्धावान् होना आवश्यक है। श्रद्धावान् विद्यार्थीमें कसौटीपर वह खरा उतरता था। विनय, सेवापरायणता एवं सिहष्णुता आदि गुण होते हैं। एकलव्य, उपमन्यू, आरुणि इत्यादि अब भी अपनी श्रद्धावान् विद्यार्थी गुरुके प्रति कभी तनिक भी रूक्ष गुरुनिष्ठाके लिये स्मरणीय हैं। बालक आरुणिमें श्रद्धा, व्यवहार नहीं करता, उसकी जिज्ञासा सदैव विनययुक्त तत्परता एवं संयतेन्द्रियताकी पराकाष्ठा थी। गुरुवर होती है। वह गुरुको नित्य प्रणाम करता है एवं उनकी धौम्यकी आज्ञा ही उसका जीवन था। वर्षाकालमें सेवा करनेमें अधिक रुचि रखता है। गुरुजीके खेतकी मेंड़ टूट गयी थी। यदि खेतकी मेंड़ दूसरा सूत्र है—तत्परता। तत्परताका तात्पर्य है— ठीक करके बाँधको पक्का न किया जाता तो खेतीके लगन एवं परिश्रम। श्रद्धाके साथ-साथ विद्या सीखनेकी नष्ट होनेकी पूर्ण आशंका थी । गुरुजी चिन्तित हो उठे।

दूसरा सूत्र है—तत्परता। तत्परताका तात्पर्य है— लगन एवं परिश्रम। श्रद्धाके साथ-साथ विद्या सीखनेकी लगन एवं उसके लिये परिश्रम करना भी नितान्त आवश्यक है। अन्यथा श्रद्धाके नामपर शिथिलता, आलस्य एवं अकर्मण्यता आ जानेका भय रहेगा। तीसरा

पेटसे जल—

आरास्य एवं अक्रमण्यता आ जानका मय रहना तासरा सूत्र है—संयतेन्द्रियता। संयतेन्द्रियताका अर्थ है मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखना। उनकी विषयोंसे विरक्ति हुए बिना श्रद्धा एवं तत्परता दोनों ही न तो पनप ही सकती

इन्द्रियाका वशम रखना। उनका विषयास विरक्ति हुए बिना श्रद्धा एवं तत्परता दोनों ही न तो पनप ही सकती हैं और न स्थायी ही रह सकती हैं। चंचल मन, इन्द्रिय एवं चित्तसे ज्ञान वैसे ही निकल जाता है, जैसे भिश्तीके

खेतके बाँध ठीक करनेकी गुरुआज्ञा थी और दूसरी ओर थी वर्षा एवं ठंड। कोई मार्ग न देखकर अन्तमें आरुणि स्वयं ही खेतकी मेंड़ बनकर लेट गये। खेतमें पानी जाना

बालक आरुणि इसे कैसे सहन कर सकता था?

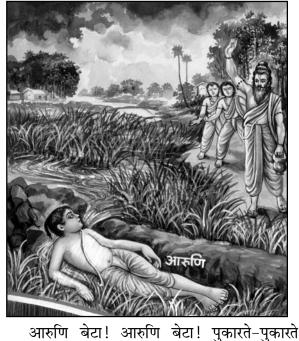
गुरुवरकी आज्ञा मिली और वह खेतकी मेंड़ ठीक

करनेको तैयार हो गया। आरुणिके पहुँचते-पहुँचते खेतका बाँध टूट चुका था। वर्षा तेजीसे हो रही थी।

अब बेचारा अकेला आरुणि क्या करता? एक ओर

बन्द हो गया; परंतु ठंड एवं वर्षाके पानीसे वे मूर्च्छित-

खेतकी मेंड ठीक करके नहीं लौटे। अध्ययनकालमें विलियम जोन्स लंदनकी रायल सोसाइटीके फेलो बने। आरुणिको अनुपस्थित देखकर गुरुजी चिन्तित हो उठे। फिर १७८०में उन्होंने स्वयं वैटेवियामें एक एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना की और १७८४ में इन्हीं जोन्स साहबने कलकत्तामें एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना



से हो गये। रात्रि बीती, दूसरा दिन आया, आरुणि

गुरुजी खेतमें जा पहुँचे। पानीसे सर्वथा मूर्च्छित अवस्थामें खेतकी मेंड़ बने आरुणिको देखकर गुरुजी अपने आँसू

रोक न सके। उन्होंने आरुणिको उठाकर हृदयसे लगा

लिया और आश्रममें आये। उपचारसे आरुणि होशमें आये। 'बेटा! अब तुम्हें अध्ययनकी आवश्यकता नहीं

है! तुम्हें बिना अध्ययन किये ही विद्याएँ प्राप्त हो

जायँगी।' गद्गदकण्ठसे गुरुजीने आशीर्वाद दिया। गुरुजीके आशीर्वादसे आरुणिको सचमुच बिना पढ़े ही समस्त

विद्याओंका ज्ञान हो गया और वे वेदके पारंगत विद्वान् हुए। यद्यपि आजका छात्र विद्याध्ययन एवं गुरु-सेवाका

समन्वय नहीं कर पाता है, परंतु ये उदाहरण असत्य नहीं

हैं। आरुणिने उपर्युक्त तीनों सूत्रोंसे ही समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं।

अभी इस युगकी भी एक ऐसी ही घटना है। उस समय भारतपर अंग्रेजोंका शासन था और कलकत्ता

भारतको राजधानी थी। आज विश्वमें रायल सोसाइटी

संस्कृत ही विश्वकी सबसे पुरातन समृद्ध भाषा है। सर विलियम जोन्सको संस्कृत भाषाका ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा हुई और चार्ल्स विल्किन्सनसे उन्हें इसकी जानकारीमें पर्याप्त सहयोग मिला। फिर उनकी मित्रता कलकत्ताके कृष्णनगरके महाराजा श्रीशिवचन्द्रसे हुई।

उनकी संस्कृत-ज्ञानकी अभालाषा तीव्र थी और उन्होंने अपने मित्र राजा साहबके सम्मुख यह इच्छा व्यक्त की। कहते हैं-राजा साहब उनके लिये किसी संस्कृत

भाग ९२

शाखाएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। सन् १७७२ ई० में सर

की। लार्ड टीनमाउथने इनकी जीवनी छ: जिल्दोंमें विस्तारसे लिखी है। विलियम साहब भारतकी विद्याओंकी गुणगाथाएँ सुनकर इसके साहित्यसे बहुत प्रभावित हुए। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यदि विश्वको कोई अमूल्य ज्ञान-सम्पदा दे सकता है तो वह भारतवर्ष ही है। भारतवर्षके साहित्य, अध्यात्म, जीवन-दर्शन सभी आदर्श हैं। अत: इनका अध्ययन आवश्यक था। वे उन दिनों विश्वकी १२ प्रमुख भाषाओंके जानकार विद्वान् थे। १७७१ई० में इनका पर्शियन ग्रामर प्रकाशित हुआ। अब

वे प्राच्य ज्ञान एवं संस्कृत भाषाकी जानकारीके लिये भारत आना चाहते थे। अन्तमें वे उन दिनों कलकत्तास्थित

भारतके सुप्रीमकोर्टके न्यायाधीश बनकर भारत आये।

ही था। अन्य भारतीय भाषाओंमें पुस्तकें नगण्य-सी थीं।

उस समय भारतका सम्पूर्ण ज्ञान देवभाषा संस्कृतमें

विद्वान्की खोज करने लगे, जो उन्हें संस्कृत पढ़ा सकते। उस समयके संस्कृतके विद्वान् लोग विदेशियोंके सम्पर्कमें आनेमें अरुचि रखते थे, उन्हें उनके संगसे समाजकी

भर्त्सनाका भय था। अत: कोई भी विद्वान् सर विलियम जोन्सको संस्कृतकी शिक्षा देनेके लिये राजी नहीं हो रहा

था। राजा साहबके बहुत चेष्टा करनेपर अन्तमें कविभूषण

तथा एशियाटिक सोसाइटी नामकी विज्ञान-विद्याकी श्रीरामलोचनजी इस कार्यके लिये राजी हुए। उन्होंने सर

संख्या ६] विद्या-प्राप्तिके	
_{ष्टकष} क्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक	_{ष्कष्कष} ्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्कष्
कविभूषणजीने सर्वप्रथम सर विलियम जोन्सको	विलियम जोन्सकी सफलतामें अनेक गुणोंमें उपर्युक्त
भारतीय विद्यार्थियोंकी गरिमा एवं श्रद्धा, तत्परता और	
	तीनों सूत्र ही मुख्य थे।
संयतेन्द्रियताकी महिमासे अवगत कराया। सर विलियम	सर विलियम जोन्स ही क्यों? आज भी कोई
जोन्सने भारतीय विद्यार्थियोंके ढंगको अपनाया। उन्हें	विद्यार्थी इन सूत्रोंको अपनाकर अवश्य ही विद्याध्ययनमें
तो संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा थी।	सफलता प्राप्त कर सकता है। परंतु आजके अधिकांश
उन्होंने अपनी कोठीके नीचेका कमरा बिलकुल भारतीय	विद्यार्थी इन सूत्रोंसे दूर होते जा रहे हैं। इन सूत्रोंके प्रति
ढंगसे बनवाया। उस कमरेमें गुरुवर कविभूषणजीके	उनके मनमें केवल उपेक्षा ही नहीं है; कुछ घृणा भी है
लिये एक उच्च आसन लगवाया गया एवं सर विलियमने	और श्रद्धाका स्थान तो संशयने ले लिया है। यहाँतक
अपने लिये गुरुजीसे नीचे फर्शपर आसन लगाया।	कि विद्यार्थीलोग गुरुको अपनेसे भी अयोग्य समझते
कमरा नित्य गंगाजलसे धोकर पवित्र किया जाता था।	हैं। इससे विद्या-लाभ दुर्लभ है। तत्परताके स्थानपर भी
सर जोन्समें अपने गुरुजीके प्रति पूर्णरूपसे श्रद्धा थी। वे	अनुशासनहीनता आ गयी है। दिन-प्रतिदिन विद्यार्थियोंमें
उनका पूर्णरूपसे आदर करते थे। उन्हें नित्य प्रणाम	अनुशासनहीनता एवं उच्छृंखलता बढ़ती ही जा रही
करते और समय-समयपर उनकी सेवा करनेको तैयार	है। वे लगन एवं परिश्रमको भूल-से गये हैं। नकल-
रहते थे। इनकी विद्याध्ययनकी लगन ऐसी थी कि वे	झगड़ा आदि तथा परीक्षामें उत्तीर्ण होनामात्र ही आजके
अपने गुरुजीके संकेतमात्रसे पाठ समझनेकी चेष्टा	विद्यार्थियोंका लक्ष्य रह गया है। नकल करते समय
करते। अपना पाठ सीखनेमें विलियम साहबने लगन	यदि शिक्षक उन्हें पकड़ता है तो विद्यार्थीगण केवल
एवं परिश्रममें किसी प्रकारकी कमी न रखी। इतना ही	उनकी पिटाई ही नहीं करते, बल्कि प्राणतक लेनेके
नहीं, संयतेन्द्रियताके लिये सर विलियम जोन्सने अभक्ष्य	लिये उतारू हो जाते हैं। संयतेन्द्रियताकी तो आजके
वस्तुएँ तथा मदिरा आदिका भी सर्वथा त्याग कर दिया	विद्यार्थी आवश्यकता ही नहीं समझते। उनकी समझमें
था। वे प्रात:काल केवल थोड़ी-सी चाय लेकर अध्ययनमें	विद्यासे तप या संयतेन्द्रियताका कोई सम्बन्ध नहीं है।
लग जाते थे। इन्हीं कारणोंसे गुरुजीके आशीर्वादसे सर	छात्रोंके लिये खान-पानकी शुद्धिका कोई भी अर्थ नहीं
विलियम जोन्स एक दिन संस्कृतके पूर्ण विद्वान् हो	है। दिन-प्रतिदिन विद्यार्थियोंमें अभक्ष्य वस्तुएँ—मांस-
गये। उन्होंने स्वयं संस्कृतके कई ग्रन्थोंका अंग्रेजीमें	अण्डे एवं मदिरा आदिका प्रचार बढ़ रहा है। इन
अनुवाद भी किया और उनकी सोसाइटीसे तो अबतक	अभक्ष्य वस्तुओंका प्रभाव उनके मन एवं इन्द्रियोंपर
हजारों संस्कृत तथा भारतीय भाषाओंके ग्रन्थ एवं	पड़ता है, जिससे वे चंचल होते हैं। भला चंचल
जर्नलके अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें स्वयं लिखे	मनका विषयासक्त विद्यार्थी मेधावी कैसे बन सकेगा?
हुए आलोचनात्मक निबन्ध हैं। इनका शकुन्तलाका	अच्छा होता कि आजका विद्यार्थी विद्या-प्राप्तिके इन
अनुवाद तथा तत्सम्बन्धी हस्तलेखों एवं पाण्डुलिपियोंका	महत्त्वपूर्ण सूत्रोंपर पुन: ध्यान देकर विद्याध्ययनके अपने
संग्रह अद्वितीय श्रमका कार्य था। उसीका आश्रय लेकर	अमूल्य समयरूप धनका सदुपयोग करने लगते और
मोनियर विलियम्ससाहबने शकुन्तलाका 'Hundred Best	अनुशासनहीनता और उच्छृंखलताको पास न फटकने
Books of the World' में उसका शुद्धतम मूल पाठ	देते। इस प्रकार 'विद्या ददाति विनयम्' का आदर्श
एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया। फिर तो सारा	पुन: स्थापित हो जाता।
	•••

जीवनमें नया परिवर्तन (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०एच० डी०)

स्वर-विज्ञानकी नयी खोजें अद्भुत हैं। मनोवैज्ञानिकोंने जगतुमें एक अजीब कोलाहल, कसर और तेजी पैदा हो

सिद्ध किया है कि जो शब्द आपके मुखसे निकलते हैं, जाती है। जितनी देरतक क्रोधके शब्द आपके मुँहसे

उनमें ऐसे-ऐसे गुप्त अर्थ छिपे हुए हैं, जिनका बल निकलते रहेंगे, उतनी देरतक आपके मानसिक संस्थानमें

आपके जीवनको बदल डालनेकी सामर्थ्य रखता है। आपके मुखसे निकलनेवाला हर एक स्वर या

शब्द, चाहे उसका कुछ भी अर्थ क्यों न हो, आपके मन,

वाणी और सम्पूर्ण शरीरको चलायमान कर देनेकी ताकत

रखता है। शब्द बोलते समय क्या होता है ? ध्यानसे देखिये,

इससे हमारी समस्त नाडियाँ झंकृत हो उठती हैं। हमारे मुखमण्डलके अवयव विशेषरूपमें तनते या ढीले पड़ते

रहते हैं। हमारे ओंठ हिलते हैं, पर साथ ही हमारे नेत्र, हमारे कपोल, हमारा मुखमण्डल एक विशेष प्रकारसे देदीप्यमान हो उठता है।

प्रत्येक शब्दके साथ एक विशेष तथा अन्य छोटे-छोटे असंख्य भाव छिपे हुए हैं। जब हम अर्थ समझकर

किसी भी शब्दका उच्चारण पुरी निष्ठा और एकाग्रतासे

करते हैं, तो वे भाव हमारे मानसिक जगत्में तथा शरीरके रक्तके कण-कणमें फैल जाते हैं।

हमारा सम्पूर्ण मानसिक वातावरण उसी स्वरसे आच्छादित हो उठता है। शरीरका अणु-अणु उसी

शब्दके भाव तथा अर्थसे कॉंप उठता है या यों कहें वह उसी शब्दसे ढल जाता है।

आप कोई शब्द पूर्ण विश्वास और एकाग्रतासे

उच्चारण कीजिये और साथ ही दर्पणमें अपने मुँहकी

आकृति भी देखिये। आप पायेंगे कि उस शब्दके भाव या अर्थके अनुसार ही आपकी आकृति भी बनती-

बिगडती जा रही है। जैसे ही क्रोध, आवेश या उत्तेजनाका कोई शब्द

आपके मुँहसे निकलता है, वैसे ही आपका चेहरा तन जाता है, ओंठ कॉॅंपने लगते हैं, सम्पूर्ण शरीरमें थरथराहट उत्पन्न हो जाती है, आपके नेत्र चढ़ जाते हैं। इन बाह्य

भी भयंकरता छायी रहेगी। वैसी ही अन्त:स्थिति बन जायगी। आपके हृदयमें क्रोधाग्नि जलने लगेगी। दिलकी धडकन बढ जायगी। शरीरमें गरमी, खुश्की और वायु-

प्रकोप प्रतीत होगा। देरतक क्रोधके शब्दोंका उच्चारण करनेसे सिरमें भारीपन आ जायगा। आप पायेंगे कि आपकी कमर दर्द करने लगी है।

बुरे शब्दोंसे मनोरोग स्वर-विज्ञान बतलाता है कि बुरे शब्दोंका उच्चारण

करनेसे मनुष्य मानसिक बीमारियोंका शिकार बनता है। देरतक क्रोध, आवेश, भ्रम, संदेह, द्वेष, घृणाके शब्द बोलनेसे मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

प्रत्येक अच्छा या बुरा शब्द एक प्रकारका बीज है, जो बोलनेसे मनके गुप्तभागमें जड जमा लेता है। ये जड़ें बार-बार वही शब्द या वाक्य बोलनेसे बढ़कर वृक्ष बन जाती हैं और वैसे ही अच्छे या बुरे फल जीवनमें

प्रकट करती हैं। बरे शब्दोंसे स्वभाव कर्कश, उत्तेजक, क्रोधी, ईर्ष्याल्, दम्भी बन जाता है। मनोविज्ञानवेत्ता बतलाते हैं कि जो व्यक्ति या

असभ्य जातियाँ मुँहसे कुशब्द, वासनासे सने गाने, गाली-गलौज इत्यादिका उच्चारण किया करती हैं, उनके बच्चोंके चरित्रोंके गिरानेमें इन कुशब्दोंका बडा

हाथ होता है। अबोध बच्चे बिना उनका अर्थ समझे जैसे गन्दे और अश्लील शब्द माँ-बाप, पास-पड़ोस और निकट वातावरणमें सुनते हैं, वे वैसा ही उचित समझकर उन्हें गुप्त मनमें बीजरूपसे जमा लेते हैं।

सिनेमाके अश्लील गीत गुनगुनाया करते हैं। बड़े होनेपर उनका गन्दा और विकृत मतलब समझकर वे उधर ही दुलक पडते हैं, फिर मनमें बसे उन शब्दोंके अनुसार ही

अपना जीवन ढालने लगते हैं और सदाके लिये पतनके परिधारमिक्षें इक्षरमे इक्षरिक इक्षरिक इक्षरिक देवी एक ratto इंग्रेप्युडक अधिक समावित्। प्रिक्षि स्मिति क्ष्मिति क्ष्मिति हिंदी है कि Avinash/Sha

संख्या ६] जीवनमें नया परिवर्तन २३		
\$	**************************************	
शब्द और हमारे संस्कार	कहलाता है। जो व्यक्ति मन्त्रोंपर चित्तको एकाग्रकर इन्हें	
हमारा प्रत्येक बोला हुआ शब्द हमारे गुप्त मनपर	जीवनमें उतार लेता है, भारतीय पद्धतिके अनुसार उसके	
एक प्रबल संस्कार छोड़ता है। उस संस्कारसे मनुष्यका	जीवनका काया-पलट हो जाता है।	
स्वभाव, आदतें और चरित्र बनते हैं। उन्हीं गुप्त	मन्त्रोंके जपसे अर्थात् पूरी श्रद्धा और निष्ठासे	
संस्कारोंके बलपर वह समाजमें अनेक कार्य करता है।	एकाग्र होकर उच्चारण करनेसे नयी शक्ति प्राप्त होती	
इन कर्मोंसे जीवन-निर्माण होता है। अत: हमारी जिह्वासे	है, नयी स्वस्थ उत्पादक मन:स्थितिकी प्राप्ति होती है।	
निकलनेवाले शब्दोंका दैनिक जीवनमें बड़ा महत्त्व है।	उत्तम शब्दोंमें महान् उत्पादक गुणकारी शक्ति भरी हुई	
शब्द ही मनुष्यके निर्माता हैं, संसार-संघर्षमें सफलता	है। इनके द्वारा एक अदृश्य वातावरणका निर्माण होता	
अथवा विफलता देनेवाले हैं।	है, जो जीवनकी दिशाको बदल डालता है। शब्द	
हमारे मुखसे निकलनेवाले शब्द ही जीवनको सरस	आपके मनसे जुड़ा हुआ है, जो कुछ आप उच्चारण	
अथवा नीरस बनाते हैं। स्वस्थ और कल्याणकारी	करेंगे, वैसा ही भाव आपके मन, हृदय तथा सम्पूर्ण	
स्वरोंके उच्चारणसे नूतन विचारों, भावनाओं और संस्कारोंका	शरीरमें, उसके कण-कणमें फैल जायगा। आपकी	
निर्माण होता है।	आत्माकी भी वैसी ही उच्च या निम्न स्थिति होगी।	
शान्त और पवित्र शब्दोंके निरन्तर साधन और	एक विद्वान्ने मन्त्र-जपका मनोवैज्ञानिक रहस्य	
संयमद्वारा मनुष्य जीवनकी कठिनाइयों और उत्तेजनाओंके	स्पष्ट करते हुए सत्य ही लिखा है—	
अनेक क्षणोंमें विजय पानेमें समर्थ हुआ है। विचारकों,	'शब्द उच्चारण करने या मन्त्र जपनेका सबसे	
कवियों, चिन्तकों और उपदेशकोंके शब्द अनेक व्यक्तियोंके	पहला प्रभाव मन्त्र जपनेवालेके शरीरपर पड़ता है, अर्थात्	
जीवनमें नया मोड़ पैदा करनेवाले हुए हैं। शब्द न हों	सबसे पहले शरीरके जीवन-परमाणु गरम होकर प्रत्येक	
तो मनुष्यका अस्तित्व ही न रहे। उन्नति ही रुक जाय।	गुप्त और प्रकट नस, नाड़ी, तन्तु तथा इससे भी सूक्ष्म	
तमके निगूढ़तम क्षणोंमें कवियोंके शब्दोंद्वारा प्रकाशकी	नासाजालमें गरमी पहुँचायेंगे, जिससे वे ठीक-ठीक	
अभिनव प्रभाका उदय होता है।	स्वास्थ्यवर्धक क्रियाएँ करने लगेंगे। अधिक मन्त्र जपनेसे	
शब्द-साधनासे सुप्त मानवी शक्तियाँ जागती हैं।	बाहरके जीवन-शक्ति-परमाणुओंमें धक्का लगना प्रारम्भ	
नयी सृजनात्मक शक्ति और अद्भुत सामर्थ्यका उदय	होगा और लगातार धक्का लगनेसे वे परमाणु और	
होता है। निष्प्राण व्यक्तिमें नयी जान और नये प्राण आते	अधिक गरम हो जायँगे। अधिक-से-अधिक गरमी	
हैं। मूढ़ मन भी सशक्त शब्दोंके बार-बार उच्चारणसे	पहुँचनेसे वह गरमी अपने कारणमें लय होती है	
विकसित हो जाता है।	अर्थात् सूर्यकी गरमीकी ओर आकर्षित होती है और	
भारतीय तत्त्ववेत्ताओंने इसीसे 'मन्त्र-विज्ञान' नामक	फिर सूर्यसे वह शक्ति जापकको वापस प्रदान होती है	
प्रक्रियाओंको जन्म दिया है। मन्त्र क्या है। वह चुने हुए	और जिस इच्छासे शब्द या मन्त्र उच्चारण किया	
सशक्त, तेजस्वी, स्वस्थ और अनेक गुणकारी शब्दों या	गया है, वह इच्छा पूर्ण हो जाती है। जीवन उसके	
ध्वनियोंका संग्रह है। ये वे शब्द हैं, जो विशेष अर्थ	अनुसार ढल जाता है। प्रत्येक शब्दके उच्चारणकी	
रखते हैं और किसीके भी जीवनमें आधारभूत परिवर्तन	ऐसी शुभाशुभ प्रतिक्रिया है।'	
करनेकी क्षमता रखते हैं। ये मन्त्र हमारे आचार्योंने बड़े	कहनेका मतलब यह है कि हमारे शास्त्रों, मुनियों	
अनुभव और ज्ञानसे बनाये हैं। अपने अनुभवोंका निचोड़	और उपनिषदोंने बोले जानेवाले प्रत्येक शब्दके प्रति बड़ा	
इनमें भर दिया है। मन्त्रमें आये हुए शब्दोंका साकार हो	सावधान रहनेका आदेश दिया है; क्योंकि शब्दमें नयी	
जाना, जीवनमें पूरी तरह चरितार्थ हो जाना ही मन्त्रसिद्धि	सृष्टिकी रचना करनेकी बड़ी प्रबल शक्ति है। जो काम	

िभाग ९२ हम वर्षोंमें नहीं कर सकते, उसे चुने हुए शब्दोंकी शक्ति बनी रहती है।' कुछ क्षणोंमें ही कर दिखाती है। शब्दकी चुम्बकीय 'मैं अपने अन्दर अनन्त शक्तिका अनुभव कर रहा हैं। मेरे अन्दर अखिल विश्वमें व्याप्त ईश्वरीय सत्ताका शक्तिद्वारा खिंचकर इच्छित वस्तु हमतक पहुँचती है। अत: हम किन शब्दोंका प्रयोग करें ? उत्तर है— स्वरूप प्रकट हो रहा है। मेरा निर्माण भगवानुके सनातन **'जिह्वा मे मधुमत्तमा**' (तैत्तिरीय० १।४) शुद्ध अंशसे हुआ है। मैं अपने अन्दर उसी मंगलमय भगवानुका दर्शन कर रहा हूँ। मैं हर प्रकारसे शुद्ध हूँ, हे ईश्वर! मेरी यह जीभ मीठी वाणी बोले। मैं भी सात्त्विक हूँ। मुझमें पूर्ण ज्ञान है। पूर्ण शक्ति है—प्रेम है, कभी कटु, कर्कश और कुवचन बोलकर अपनी वाणीको दुषित न करूँ। ईश्वर मुझमें है, मैं ईश्वरमें हूँ।' हम सर्वदा, दैनिक जीवनमें, समाजमें, परिवार और अपने इच्छानुकूल सुन्दर सात्त्विक मन्त्र चुनिये। व्यवहारमें उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करें, जो मृद्, सरस, उनका अर्थ समझिये और प्रतिदिन पूजामें उन्हें बार-बार दुहराइये। ऊपर लिखे मानसिक संकेत बनाइये और उत्साहप्रद, मधुर और हितकारी हों। जो हमारी नीरसता रात्रिमें सोते समय तथा सुबह उठते ही उनका उच्चारण दूर भगाकर मनमें नयी उमंग, नयी प्रसन्नता और हृदयके उल्लासकी अभिवृद्धि करें। कीजिये। भक्तोंके, कवियोंके तथा नीति एवं उपदेशोंसे सने हुए भजन, गीत और कविताएँ श्रद्धापूर्वक उच्चारण संतोंकी वाणियाँ, मधुर भगवद्भजन, आरती, भक्ति-संगीतका अथाह भंडार आपके हृदयमें उल्लासपूर्ण कीजिये। कीर्तन कीजिये। निश्चय जानिये, सात्त्विक भावोंकी सृष्टि कर सकता है। मनको नयी प्रसन्नता और शब्दोंका रसायन आपके जीवनमें एक नया परिवर्तन ला देगा। हमारे यहाँ 'जप' नामकी जो धार्मिक क्रिया है, उत्साहसे भर सकता है। मधुर तथा उन्नतिशील भावोंके मनोवैज्ञानिक आधार यही शब्द-शक्ति है। अच्छे मन्त्रोंके गीत और कविताओंका उच्चारण कीजिये। जपसे नये-नये गुण, ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रकट होती हैं और मनको शान्तकर चुपचाप ऐसे शब्दोंका उच्चारण कीजिये, जो मनको शान्त और संतुलित करें। आत्मश्रद्धाको शुभ प्रवृत्तियोंका विकास होता है। बढायें। कर्तव्यपथपर चलनेको प्रोत्साहित करें। हमारी यही कामना होनी चाहिये, 'हे ईश्वर! मेरी जिह्वा सदा मधुर, सत्य, कल्याणकारी, सर्वहितकारिणी जैसे, आप कहिये, 'मेरा अन्त:करण दृढ़ है। मैं वाणी ही बोले। मैं कभी कटु, कर्कश और कुवचन शान्त और संतुलित हूँ। मेरे मनमें किसी प्रकारकी क्षुद्र बोलकर अपनी वाणीको दूषित न करूँ। सात्त्विक चंचलता, व्याकुलता और बुराई नहीं ठहर सकती। मेरे अन्दर साक्षात् ईश्वर विराजमान हैं। उन्हींकी शक्ति शब्दोंसे अपने इर्द-गिर्द पवित्र वातावरणका निर्माण मुझमें कार्य कर रही है।' करूँ। मैं निरर्थक बकवाससे सदा बचता रहूँ। सारगर्भित, 'मैं परमात्माका अंश हूँ। मैं समस्त प्राणिमात्रमें पवित्र और कल्याणकारी शब्दोंका ही प्रयोग करता रहूँ। अपनी ही परछाईं देखता हूँ। सबको प्रेम, दया और मेरे मुँहसे 'ॐ शान्ति', 'हरे कृष्ण' 'जय राम', इत्यादि सहानुभृतिसे देखना चाहता हूँ। मैं सत्-चित्-आनन्दस्वरूप पवित्र नाम ही निकलें। मेरी वाणी सर्वहितकारिणी हो। मुझे आध्यात्मिक जीवनकी ओर ले चलें।' हूँ, मैं आत्मा हूँ, समस्त रोग और शोकसे रहित हूँ, मैं अपनी आत्माके गुणोंको ही जीवनमें प्रकट कर रहा हूँ।' ॐ विश्वानि देव सवितुः दुरितानि परा सुव 'मेरे हृदयमें अखण्ड प्रसन्नता, अखण्ड आनन्द यद्भद्रं तन्न आ सुव। 'हे परमपिता, जगदीश्वर! जो दु:खदायक वस्तुएँ और शाश्वत शान्तिदायक सिद्धचारोंका दिव्य प्रवाह हों, उन्हें हमसे दूर हटा दीजिये। जिन शब्दोंसे हमें आत्मिक निरन्तर बहता रहता है। मेरी शान्तिको कोई भी भंग नहीं सुख प्राप्त हो, उन्हें ही हमारे मुखसे निकलने दीजिये।' कर सकता। विपरीत स्थितिमें भी मेरी मन:शान्ति अक्षय

संख्या ६] कहानी— परम योग (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र') दुग्धोज्ज्वल भस्म है। यत्नपूर्वक यह अर्चन-सामग्री **'परो हि योगो मनसः समाधिः।'** (भागवत) दुरसे लायी गयी है इस अवसरके लिये। हिमालयके दुर्गम क्षेत्रमें नेपाल राज्यके मुक्तिनाथसे दिशाएँ आलोकसे भर गयीं। यह ठीक है कि और आगे दामोदरकुण्ड (नकली नहीं, असली दामोदरकुण्ड)-के समीप कुछ योगसिद्ध साधकोंका भुवनभास्करकी किरणोंने शिखरोंको स्वर्ण-स्नात कर समुदाय एकत्र था। बड़ी-बड़ी कृष्णकपिश जटाएँ, दिया है; किंतु अम्बरसे यह जो कोटि-कोटि सूर्यसम सुगठित प्रलम्ब देह, भस्मभूषित सर्वांग और फटे कानोंमें अपार प्रकाश-पुंज सीधे उतरता आता है। सहसा एक मोटी योगमुद्रा। यह सिद्ध योगीश्वर गुरु गोरखनाथका साथ ससम्भ्रम उठ खड़ा हुआ योगियोंका समुदाय और शिष्यमण्डल था और उनके सिद्धेश्वर गुरु आज उनके गुरु गोरखनाथने अंजलिमें कमलपुष्प उठाये। एक साथ उन कण्ठोंसे परावाणी गूँजी—'अलख! दत्त गुरु दाता!' साथ थे। 'भगवान् दत्तात्रेय आज सोमवती अमावस्याका स्नान दामोदरकुण्डपर करनेवाले हैं।' सर्वज्ञ योगियोंके 'आपके समुदायकी साधना अव्याहत है ?' गुरुदत्तने सन्देश-विनिमयके लिये कोई चर अथवा स्थूल माध्यम कुशल-प्रश्न किया। उन्होंने स्नान कर लिया था और तो आवश्यक नहीं है। कल सायंकाल गुरुको ध्यानमें प्रशस्त शिलातलपर व्याघ्राम्बर सनाथ हो गया था उनका भगवान् दत्तका संकल्प ज्ञात हो गया था और अपने आसन बनकर। पादपद्मोंमें अर्चाके कमलदल पडे थे। वाम भाग योगकक्षके सहारे तनिक झुक गया था। प्रमुख शिष्योंके साथ आज उष:कालमें उन्होंने दामोदरकुण्डके हिमशीतल जलमें डुबिकयाँ लगायीं। विभूति-भूषित भाल और रुद्राक्षकी मालाओंकी शोभा भस्मोद्धलन हो चुका सबका और अब तो सभी हिमयुक्त उस कर्पूर-गौर श्रीअंगके कण्ठ, भुजा, मणिबन्धमें। दूरसे शिलाओंपर बैठे उन सुरासुरवन्दित श्रीअत्रिनन्दनके हिमशिलाओंके टूटने-गिरनेका मन्दस्वर आने लगा था; आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किंतु जहाँ भुवन-वन्दित योगियोंका समुदाय एकत्र हो, यह हिमक्षेत्र—तुण भी नहीं होता यहाँ। नीचे जमे उनकी शान्तिमें व्याघात बननेका साहस प्रकृति कैसे कर हुए उज्ज्वल हिममें यत्र-तत्र कुछ शिलाएँ हैं और ऊपर सकती है ? वायुके पद भी वहाँ शिथिल-संयमित हो नील गगन है। चारों ओरसे रजतकान्त शिखरोंसे घिरे इस जाते हैं। क्षेत्रमें दामोदरकुण्डका जल पारदर्शी हिमके नीचे स्थिर-'नित्य पूर्णकाम भुवनेश्वर प्रभु जब स्वयं साधकोंके साफल्यके लिये सप्रयत्न हैं, इसी मंगल विधानके लिये शान्त पड़ा है। भगवान् भास्करके दर्शन हुए नहीं किंतु उनकी क्षितिजसे उठती किरणोंने हिमके इस साम्राज्यपर उन्होंने यह योगेश्वरावतार अपना रखा है, विघ्न कैसे गुलाल बिखेरना प्रारम्भ कर दिया है। किसीकी साधनामें व्याघात बन सकते हैं; किंतु—, गुरु केवल एक शिलापर मृगचर्म बिछा है। अपेक्षाकृत गोरखनाथने अंजलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'जब इन कुछ ऊँची शिला है वह। उसपर जो प्रलम्बबाहु, पुण्य चरणोंके दर्शनका सौभाग्य मिला है, सभी आदेश उन्नतभाल, कमललोचन तेजोमय जटाधारी हैं—इन एवं ज्ञानोपदेशसे कृतार्थ होनेकी लालसा रखते हैं।' बाबा गोरखनाथका भी क्या परिचय देना आवश्यक है? 'मैं देखना चाहता हूँ पहले आपके साधकोंकी साधना-परिपाटी!' भगवान्ने अपना अभिप्राय व्यक्त सभी केवल कौपीन-परिधान हैं। योगियोंकी सिद्ध कायाको शैत्य स्पर्श करनेमें असमर्थ है। एक शिलापर किया। 'जैसी आज्ञा!' गुरु गोरखनाथके संकेतपर एक कमलपत्रपर दुर्वादल, कमलपुष्प, कुछ फल तथा नवनिर्मित

भाग ९२ तरुण योगी आये। उन्होंने आसन स्थिर किया, आधे निवास दे सके तो यह सफल हुई।' क्षणमें प्रत्याहार ध्यानमें और ध्यान समाधिकी भूमिमें '**लं**' केवल बीजका उच्चारण किया अब आसनपर पहुँचा। स्थिर अर्धोन्मीलित दुग्! भगवान् दत्तका दक्षिण आये साधकने। शीघ्र ही दिशाएँ सौरभसे भर गयीं। कर उठा और योगी सविकल्पसे निर्विकल्पमें पहुँचनेके पुष्प-सार जैसे सम्पूर्ण पर्वतोंपर लुढ़का दिये गये हों। स्थानपर बाह्यचेतनामें आ गया। क्षण-क्षण सुरभिका परिवर्तन-मानो मनों घृत-कर्पूरका हवन हो रहा हो और अन्तमें तुलसी-मञ्जरीका स्थिर 'मनुष्य सदा समाधिमें स्थित नहीं रह सकता!' भगवान्के शब्दोंने एक सन्देश दिया—'निर्विकल्पकी अपार सौरभ! शान्ति सामान्य जीवनमें अवतरित करो वत्स! अपने भगवान् दत्तात्रेयने उत्थित करके समझाया इस गुरुदेवके आदर्शको अपनानेका प्रयत्न करो!' साधकको 'कहीं भी कोई जाय, गन्ध आयेगी ही। अगन्ध-सहजावस्था है और उसमें स्थित रहना है।' '**सोऽहं**' दीर्घ घण्टा-निनाद। दूसरे साधकने वह स्थान लिया पहलेके उठ जानेपर और उनका प्रगाढ़ इसी प्रकार रसका साधक आया। खेचरी मुद्रा तो संयम—अनाहत उनके अन्तःसे बाह्य जगत्में गूँजने की उसने; किंतु उसे उत्थित करके गुरु दत्त किंचित् लगा। शंख, वंशीके स्वर उठे और लय हुए— हँसे—'वत्स! तुम्हारे साधनने हम सबका आतिथ्य कर मेघगर्जनसे। ऊपर दिशामें प्रणवकी पराध्विन गूँजने दिया। नाना रसोंका आस्वादन अनुभव किया हमने और अमृतका स्वाद पाया; किंतु रस कहाँ लोकमें दुर्लभ हैं। लगी। 'वत्स!' भगवान् दत्तके संकल्पके साथ साधक रसातीत स्थितिमें नित्य अवस्थिति, यह लक्ष्य है तुम्हारी जागृतिमें आ गया—'वाद्योंका स्वर जगत्में दुर्लभ नहीं साधनाका।' है। मेघकी ध्वनि भी अयाचित आकाशमें गूँजती है। स्पर्शके साधकने कुछ अंग-चालनकी क्रियाएँ कीं शब्दकी साधनाका लक्ष्य है अशब्दमें स्थिति—नित्य और तब स्थिर हुआ। हिमप्रदेश सुखद उष्ण बन गया। सबके त्वक्ने पाटलदलोंके स्पर्शका अनुभव किया। सहज स्थिति जगत्के कोलाहलमें रहते अविकम्प शान्त भगवान्ने उसे सन्देश दिया 'अस्पर्श—समस्त स्पर्शींमें अशब्दमें!' 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म ॐ' अन्य साधक आ बैठे रहते स्पर्शातीत बने रहो!' थे उस प्रयोगशिलापर। नेत्र-कोणोंके संवेदन स्नायुसूत्रका 'तुमने क्या-क्या अनुभव किये?' अन्तमें भगवान् दत्तने योगी भर्तृहरिसे पूछा। उन्होंने किंचित् स्पर्श किया और स्थिर हो गये। रूप— अद्भुत अपूर्व रंगोंकी छटा जब अन्तरसे उमडी, सम्पूर्ण 'आपके पदपंकज सम्मुख हैं और उनका जो चिन्मय हिमप्रदेश रक्त, पाटलपीत, हरित, नील रंगोंसे रञ्जित प्रभाव है, वह वाणीमें नहीं आता!' विनम्र उत्तर था। होने लगा। दो-चार क्षण रंगोंकी छटा और फिर दृश्य-'तुम्हारे इन साथियोंके प्रयोगोंका चमत्कार?' अद्भुत अपूर्व दृश्य! जैसे सम्पूर्ण दिव्य सृष्टि साकार हो 'क्षमा करें प्रभु!' वाणीका संकोच कह रहा था कि भर्तृहरिका मन इन्द्रियोंके साथ नहीं था, अत: उन्हें उठी है। अन्तमें एक परमोज्ज्वल प्रकाण्ड प्रकाश-राशि। 'अलं!' प्रभुके एक शब्दने साधकको उत्थित कर कोई चमत्कार प्रभावित नहीं कर सका। कोई वृत्ति उनके दिया। 'रंग और रूप सम्पूर्ण दृश्य सृष्टिमें बिखरे पड़े चित्तमें उठी नहीं। हैं। तुम नेत्र बन्द करके संकल्प न भी करो, दिवाकरका 'यही है अलख-अलक्ष्य स्थिति!' भगवान्ने जो तीव्र तेज है, जगत्के नेत्रोंको वह नित्य सुलभ है। बताया—'मनकी यही सहज एकाग्रता परम योग है। यह साधना इस रंग-रूपको सृष्टिमें तुम्हें नित्य अरूपमें सब योगक्रियाओंका यही परम लक्ष्य है।' Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ६] वृद्धाः	वस्था २७			
**********************************	<u> </u>			
वृद्धावस्था				
् (वैद्य श्रीमोहन				
वृद्धावस्था शरीरकी जीर्णावस्था है, किंतु जीवन- शैलीमें परिवर्तनसे इस अवस्थाको युवावस्थाकी तरह जिया जा सकता है। जरावस्था विविध रोगोंकी शरण- स्थली है। जहाँ कई प्रकारके रोग शरीरको घेरे रहते हैं। शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे त्वचाके नीचे वसाकी परत गल जाती है, जिससे त्वचापर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। धमनियाँ कठोर हो जाती हैं, जिससे रक्तप्रवाहमें न्यूनता आने लगती है। अस्थियोंमें पोलापन (मज्जाकी कमी) आने लगती है। वाँत कमजोर होकर गिरने लगते हैं। आँखोंकी ज्योति क्षीण हो जाती है। कानोंमें श्रवणशक्तिका अभाव हो जाता है अर्थात् बहरापन आने लगता है। आमाशय एवं आँतोंमें पाचन रसकी कमी आ जानेसे पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, जिससे भूखमें कमी हो जाती है। इसके साथ ही पौरुष ग्रन्थिका बढ़ना एवं	लाल गुप्तजी) जाता है कि यह शरीर जीवनके अन्तिम छोरपर खड़ा अन्तकी प्रतीक्षा करने लगता है। लेकिन सोचें! मनके हारे हार है, मनके जीते जीत। वृद्धावस्था अभिशाप नहीं वरदान है। अबतक हम घरवालों एवं जगत्के लिये क्रिया-कलाप कर रहे थे। अर्थात् जी रहे थे। अब हमको स्वयंके लिये जीना है अर्थात् अब हमको अपना भावी मार्ग प्रशस्त करना है। ईश्वरसे, परमात्मासे लगन लगाना है। हमारे सभी कार्य उसीके कार्य हैं, ऐसा सोचकर नित्य उसीका चिन्तन करना है। मोहमायासे छुटकारा पाकर निर्मोही बन जाना है। यह बुढ़ापा बोझ नहीं ओज है, जीवनकी स्वर्णिम साँझ है। यह जीवनका एक परिपक्व फल है, जिसमें ज्ञानकी पूर्णता, अनुभवोंकी मिठास चिन्तनकी उपयोगिता तथा जीवन जीनेकी गहराई होती है।			
अन्त:स्रावी ग्रन्थियोंमें शिथिलता होने लगती है, कोशिकाओंकी क्षरण प्रक्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। जिससे शरीर कृशताको प्राप्त होने लगता है। मस्तिष्ककी क्रियाएँ कमजोर होनेसे स्मरण-शक्ति, एकाग्रता, श्रवण-शक्ति आदिमें भी गिरावट, चिड़चिड़ापन एवं चक्कर आना, सामाजिक जीवनसे कटाव आदि	इस वृद्धावस्थामें ही तो कई लोगोंने वैज्ञानिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक सफलता प्राप्त की है। इसे शक्तिहीन, पराधीन, बीमारीका घर, असहाय और अभिशाप समझना हमारे चिन्तनकी कमी है। इससे बुढ़पेको मापना उचित नहीं है। त्वचामें झुर्रियाँ भले ही हों, पर मनमें मुरझाहट			
विकार होने लगते हैं। ऐसी शारीरिक क्रियासे वृद्ध व्यक्तिके मनमें हीन भावके प्रवेश हो जानेसे वह मनसे हार जाता है। विशेषकर यदि घरसे उपेक्षित हो तो वह स्थिति और भी दु:खदायी हो जाती है। हीन भावना एवं हताशासे उसके मनमें यह विपरीत सोच घर कर जाती है कि उम्र ढली तो कद्र घटी। घरमें भाररूप, न घरमें प्यार न बाहर। ऑखोंकी ज्योति, चेहरेकी मुस्कान, पाँवोंकी गित,	(निराशा, हताशा या नि:सारभाव) नहीं आने देना चाहिये। यही सच्ची जीवन जीनेकी कला है। हमेशा शरीरमें उत्साह, उमंग, नया कार्य करनेका भाव होना चाहिये। हमने देखा, सुना; बहुतसे लोग कहते हैं कि समय काट रहे हैं। ऐसा कहना उचित नहीं है। वे लोग जीवनको भार समझने लगते हैं। यह बहुत बड़ी कमजोरी है। उनमें उत्साह नहीं रहा, जीवन जीनेकी उमंग नहीं रही। ऐसे लोगोंका अपने सम्पूर्ण			
जिह्वाकी वाणी, कानोंकी श्रवण-शक्ति गयी। समान आयुवाले कई इष्टमित्र, एक-एक करके समाप्त होते जा रहे हैं। हाड़-मांसका यह पिंजरा दिन- पर-दिन क्षय होता जा रहा है और एक समय ऐसा आ	जीवनमें केवल पेट भरना, मक्कारी करना, कामसे जी चुराना, अपना स्वार्थ सिद्ध करना, दूसरोंकी कमाईसे पेट पालना या गलत कमाईसे जीवन-यापन करना ही उनका काम रहा होगा, इसलिये अब उन्हें आनन्द			

भाग ९२ करना बन्द कर देते हैं। मल-मूत्र अवरुद्ध होने लगते या सुख नहीं है। इस शरीरके बारेमें गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा हैं। चमड़ी सड़-गल जाती है। हड़िडयाँ आवाज करने है कि—'आत्मा अमर है, वह नहीं मरती, शरीर मरता लगती हैं, कभी कोई टूट भी जाती है। है। आत्मा इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश कर इस प्रकार जब सारा शरीर जीर्ण हो जाता है तो जाती है। यथा— एक दिन आत्मारूपी मैनेजर भी इसे छोड़कर चला जाता है। अत: जबतक धर्मशाला (शरीर) काममें आती वासांसि जीर्णानि यथा विहाय है तबतक धर्म-कर्मकर परमात्माका स्मरण करना न नवानि गृह्वाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-भूलें। न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ जो व्यक्ति अभीतक सम्मानसे जीया और आगे भी यह शरीर एक पुराने कपड़ेकी तरह है, जब यह वह सम्मान ही चाहता है, पर वृद्धावस्था ऐसी अवस्था अत्यधिक जीर्ण हो जाता है, तब यह (आत्मा) इसे आ जाती है कि जिसमें उसे सम्मान मिलना कम हो छोड़कर दूसरा कपड़ा (शरीर) धारण कर लेता है। जाता है या मिलना ही बन्द हो जाता है। नई पीढीके दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह शरीर एक धर्मशाला है, बहुतसे लोग वृद्धोंका सम्मान करना तो दूरकी बात वे इस धर्मशालामें एक मैनेजर (मालिक) एवं एकादश तो हर वक्त अवहेलना या तिरस्कार करनेमें नहीं चूकते। हर समय यह कहकर कि—'आप नहीं समझते। कर्मचारी नित्य सतत अपना-अपना कार्य करते रहते हैं, समय आनेपर हर कर्मचारीका कार्य पूर्ण होनेपर वह आपको क्या करना है? आप चुप रहिये' आदि शब्द चला जाता है या कार्य करनेमें शिथिलता करने लगता ऐसी भाषामें कहे जाते हैं जिनमें उपेक्षाके भाव स्पष्ट है। धीरे-धीरे सभी कर्मचारी शिथिल हो जाते हैं, या परिलक्षित होते हैं। इससे वृद्ध व्यक्तिको अपना अपमान महसूस होने लगता है और वह अपने इस जीवनको भार चले जाते हैं। तबतक यह शाला अत्यन्त जीर्ण हो जाती है। दीवारोंमें टूटफूट होने लगती है। आने-जानेके मार्ग समझने लगता है। बन्द होने लगते हैं। तब वह मैनेजर भी एक दिन जिसने जीवनमें कभी अपमान नहीं सहा—परिश्रम, चुपचाप इसे छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। एकादशवाँ सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारीका जीवन जीया—वह अपने (११वाँ) कर्मचारी प्रथम पाँच कर्मचारियोंको भटकानेका ही लोगोंसे इस प्रकारका अपमान सहन करनेमें भारी कार्य करता है। मैनेजरके कहे अनुसार न चलने देता है। दु:ख महसूस करने लगता है। अन्तमें धर्मशाला निश्चल होकर मात्र मिट्टी रह जाती इससे उसका परिवारसे धीरे-धीरे स्नेह एवं लगाव है। अब इसे जानिये— घटने लगता है। तथा बदलेमें उसके मनमें जलन, कुढ़न धर्मशाला यह शरीर है। इसमें मैनेजर या मालिक इर्घ्या एवं स्नेहके विपरीत भाव पैदा हो जाते हैं। जो आत्मा है। एकादश कर्मचारी—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं भविष्यमें परिवारको भोगने पडते हैं तथा वृद्धकी अन्तिम पाँच कर्मन्द्रियाँ और एक मन है। अवस्था बिगड जाती है। अतः अन्तमें मेरा सभीसे विनम्र निवेदन है कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं। आँखकी ज्योति वृद्धोंकी आत्माको हमेशा खुश रखना उनसे शुभ क्षीण हो जाती है, कानकी श्रवण-शक्ति मिट जाती है, आशीर्वाद नित्य लेना अपने भावी जीवनको सुखी नाककी घ्राण-शक्तिका पता ही नहीं चलता, जिह्नाका समृद्धशाली बनानेका परम रहस्य है। वृद्धोंकी सेवा स्वाद नष्ट हो जाता है। चमड़ीका स्पर्शज्ञान सुन्नतामें ईश्वरकी सेवा है। उनको प्रसन्न रखना, उनसे शुभाशीष बदल जाता है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियाँ हाथ-पैर काम लेना परमात्माकी कृपा पाना है।

ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता संख्या ६] ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता (श्रीविजयकुमारजी श्रीवास्तव, एम०ए०, डी०पी०एड०, साहित्यालंकार) अखिल ब्रह्माण्डमें प्रत्येक कण परस्पर एक-जाग्रत करता है। हमें जो भी कुछ पावन भावसे प्रिय दूसरेसे आकर्षित होते हैं। यदि ऐसा न होता तो शायद होता है, उसमें मन खो जाता है। उस स्थितिमें ईश्वरसे इस अपार सुष्टिका भी चिरस्थायित्व सम्भव न होता। पृथक् विचार भी नहीं आता। आये भी कैसे? ईश्वर तो यह सम्पूर्ण जगत् ही आकर्षण अर्थात् प्रेमका ही उसी के प्रेममें समाहित होता है। परिणाम है। कण-कणमें व्याप्त यह प्रेम ईश्वरप्रदत्त है, उपनिषद्में कहा गया है—'ईशोऽनिर्वचनीय इसीलिये इसमें अत्यन्त स्वाभाविकता है, स्थायित्व है प्रेमस्वरूपः ' अर्थात्, ईश्वर वाणीसे परे तथा प्रेमस्वरूप तथा सर्वप्रियता है। है। चूँकि प्रेम ईश्वरप्रदत्त होता है, इसका स्वाभाविक प्रेमसे जुड़ जानेपर जो आकर्षण पैदा होता है, रूप लौकिक लगनेवाला होकर भी अपने मूल भावमें उसकी संयुक्तता सीधे ईश्वरीय सत्तासे होती है। गुरुवर अलौकिक ही होता है। प्रेमका वह स्वरूप अथवा रवीन्द्रनाथ टैगोरकी विख्यात रचना 'एइ तो तोमार उसकी वह अभिव्यक्ति जो लौकिक वासनाको जन्म देती प्रेम' के सीधे अनुदित भावोंद्वारा ईश्वरीय प्रेम-संकेत इसे है, हमारे अन्दर ईर्ष्या, स्वार्थ अथवा कामुकता पैदा पूर्णतः स्पष्ट कर देगा, प्रस्तुत है-करती है। वह तो प्रेमकी कोटिमें हो ही नहीं सकती। 'प्रियतम! मैं जानता हूँ, यह तेरा प्रेम है, जो पत्ते-पत्तेपर स्वर्णाभा बनकर चमक रहा है, जिससे अलसाये उसे तो मात्र वासना कहा जायगा। प्रेम ईश्वरका ही लाक्षणिक नाम है। भारतवर्षमें तो मेघ आकाशमें झूम रहे हैं; सुवासित पवन मेरे मस्तकपर आध्यात्मिक दुष्टिकोण ही अनुशासन एवं प्रेमके सामंजस्यसे जलकण बिखेर रहा है। प्रतिरोपित है। भारतके बाहर भी God is Love कहा यह सब, हे मनहरण प्रभु, तेरा ही प्रेम है। आज प्रभातकी आकाशधारा मेरी आँखोंमें भर गयी। यह तेरा गया है। प्राय: लौकिक वस्तुओं एवं विचारोंको उलट देनेसे अर्थविक्षेप हो जाता है किंतु ईश्वरीय शक्ति अनादि ही प्रेम-संकेत है, जो जीवनके कण-कणको मिला है। तेरा मुख नीचे झुका, तेरे नेत्र मेरे नेत्रोंसे मिले—मेरे और अनन्त होती है इसलिये यदि Love is God कहा जाय तो भी कोई अनर्थ नहीं होता, अपितु अर्थकी और हृदयने तेरे चरणोंका स्पर्श कर लिया। प्रियतम! मैं अधिक सार्थक मीमांसा हो जाती है। जब ईश्वर ही प्रेम जानता हूँ यह तेरा ही प्रेम-संकेत है।' है और प्रेम ही ईश्वर है तो इससे पृथक् न कोई सत्ता अब एक प्रश्न पैदा होता है। क्या ईश्वरसे ही हो सकती है और न सौन्दर्य। इस सम्बन्धमें संत साक्षात्कार किया जा सकता है ? हाँ ! अवश्य, यह प्रेमसे तुलसीदासने श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त रोचक विवेचन सम्भव है। बस! प्रेम करो और उसीमें खो जाओ, किया है-अपनेको भूल जाओ, प्रेममय बन जाओ। प्रेमकी अनन्त आवृत्तियाँ तुम्हें केवल प्रेम बना देंगी और जब प्रेमके हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ अतिरिक्त कुछ होगा नहीं तो निश्चित रूपसे तुम (रा०च०मा० १। १८५। ५) ईश्वर प्रेम है, इसलिये इसका नाम एवं चिन्तन प्रेमस्वरूप बन जाओगे। शायद यही वह समय होगा जो सरस और प्रिय लगता है। इसके द्वारा हृदयमें उत्पन्न प्रेम तुम्हें इस मानव-जीवनके चरम लक्ष्यके द्वारपर खड़ा कर हमें आह्लादित करता है, हमारी स्वाभाविक उत्कण्ठाको देगा। हाँ, एक बात अवश्य है। प्रेमका अभ्यास तो करो,

भाग ९२ उसे प्रगाढ़ बनाओ, किंतु वासनासे बचो। यदि कहीं 'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।' वासनाकी लेशमात्र भी सम्भावना हो तो अपने मानसको (गीता ५। २९) निष्कपट, निष्पाप तथा निर्विकार बनाकर ईश्वरीय प्रेमकी अर्थात् मेरा भक्त मुझे सभी प्राणियोंका सुहृद् यानी ओर मोड़ दो, वही तुम्हारे प्रेमका हेतु बन जायगा। स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी तत्त्वसे जानकर शान्तिको आपका प्रेम सार्वभौमिक होना चाहिये। अहंकारी प्राप्त करता है। एवं किसी भी जीवसे घुणा करनेवाला व्यक्ति प्रेम कर मनुष्य मानव-मूल्योंके प्रति सजग रहते हुए ही नहीं सकता; क्योंकि घृणा किसीके ऊपरी स्वरूप आध्यात्मिक चिन्तनके साथ हृदयकी वैचारिक पवित्रता, तथा गुणदोषके आधारपर होती है। शरीर तो केवल करुणा, उदारता, सेवाभाव, समर्पण तथा सम्पूर्ण जगत्के यन्त्र-मात्र है। उसमें विद्यमान प्रकाशरूपी आत्मा ईश्वरकी कण-कणमें ईश्वरानुभूति एवं ईश्वरीय प्रेमकी दीवानगीद्वारा सार्वभौम सत्ता है। हमें उसे देखनेके लिये प्रयत्नशील ईश्वरको प्राप्त कर सकता है। इस निमित्त सर्वजनहिताय रहना चाहिये। श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है-लोककल्याणकारी भावोंको धारण करनेसे भी प्रेमके स्वरूपका संवर्धन होता है। हमें प्रार्थना करनी चाहिये-प्रिय 'सब सब मम उपजाए।' मम सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। (रा०च०मा० ७।८६।४) इस प्रकार जब सभीकी उत्पत्ति ईश्वरसे ही है और सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥ वे सभी उसे अर्थात् ईश्वरको प्रिय हैं तो क्या हमें सभीसे अर्थात् संसारके सभी प्राणी सुखी हों, सभी शरीर प्रेम नहीं करना चाहिये? अप्रत्यक्ष रूपसे हमें ईश्वरकी -मनसे स्वस्थ एवं शुद्ध हों तथा बुद्धिसे दृढ़निश्चयी, प्रत्येक रचनासे उसीका रूप समझकर प्रेम करना संशयरहित हों, ईश्वरपरायण हों, सभीका कल्याण हो। चाहिये। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है— जब हमारे मानवीय क्रिया-कलाप तथा विचार शुद्ध होकर हमें परम प्रेमसे युक्त कर देंगे तो हमें संसारमें 'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम।' व्याप्त कण-कण प्रेममय प्रतीत होगा। ऐसी दशामें (गीता ९। २९) अर्थात् जो भक्त मेरेको प्रेमसे भजते हैं वे मेरेमें और हमारी प्रत्येक साँस प्रेमसे ही अभिभूत होगी तथा मैं उनमें प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हूँ। इसी आशयके विस्तारमें ईश्वरीय प्रेम-सम्बन्धोंसे एकाकार होकर हमारे जीवनको वे पुन: निर्देश देते हैं-ही प्रेमस्वरूप बना देगी। 'सबसों ऊँची प्रेम सगाई' प्रेम सगाई। ऊँची खाई॥ दुरजोधनके त्यागे, मेवा साग बिदुर **** घर सबरीके बिधि खाये. बताई। बहु स्वाद **** कीन्हीं नृप सेवा आप बने हरि नाई॥ बस * जुधिष्ठिर कीन्हों तामें जूँठ उठाई। **** राजसू-जग्य ¥, पारथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई॥ बस रथ **** \Diamond प्रीति बढ़ी गोपिन बृंदाबन, नचाई। नाच * * लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई॥ कूर इहि **** Hinduish Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH HOVE BY Vinash/Sha

भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है संख्या ६] भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है (आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना) हमारा आयुर्वेद उतना ही पुराना है, जितनी कि (Hyppocrates)-का नाम बड़े ही आदरके साथ लिया वैदिक ऋचाएँ। वैदिक ग्रन्थोंकी प्रचीनता विश्व वाङ्मयमें जाता है। इसका प्रमाण काश्यप संहिताद्वारा मिलता है, किसीसे परोक्ष नहीं है। किंतु खेदका विषय यह है कि जिसमें कहा गया है कि हिपोक्रैटिसको भारतमें शिक्षा भारतीय जनमानस—'**घरका जोगी जोगडा-आन गाँवका** ग्रहण करनेके लिये उसके पिताने भेजा था। इस प्रकार ग्रीस देशसे ही मेगस्थनीज तथा केशियस-ये दो सिद्ध'की मान्यतासे ग्रस्त है। वह भारतकी किसी भी वस्तु, व्यक्ति, संस्कृति एवं सभ्यताको मात्र वैदेशिक चिकित्सक आयुर्वेदका अध्ययन करनेके लिये उत्तरी चश्मेसे देखनेका आदी हो गया है। विश्वके अधिकतम भारतमें ३०० एवं ४०० बी०सी० में आये थे। इन दोनोंने राष्ट्र अपनी भाषा, संस्कृति एवं सभ्यताको जितना प्रत्यक्ष शरीरशास्त्र (Dissection)-का अध्ययन किया महत्त्व देते हैं भारतके अधिकांश लोग उसका चौथाई तथा ग्रीसमें इसका प्रचार-प्रसार किया। इस बातका भी स्वीकार नहीं कर पाते हैं। वास्तवमें यह भारतीयोंका प्रमाण हार्नले (Horneley)-की निम्नलिखित पंक्तियोंसे दुर्भाग्य ही है; क्योंकि उन्होंने भारतीय विद्याकी अमूल्य भी लिया जा सकता है— धरोहरको पहचाना ही नहीं। कारण? इसका क्षेत्र अति We have no direct evidence of the practice व्यापक है, जिसके लिये सुक्ष्म एवं दीर्घकालिक समयकी of human dissection in Hyppocrates school but महती आवश्यकता है। भारतीय मनीषी वीतरागी थे, now of the visit about 400 B.C. of Ktesias to उन्हें फैशन अथवा प्रदर्शन करनेका शौक नहीं था India the alternative conclusion of dependence of जबिक अधिकांश छोटे-बडे विद्यालयोंके विज्ञान एवं greek anatomy on that of India can not be simply टेक्नोलॉजीसे सम्बद्ध बच्चे टाई बाँधे बिना कॉलेजमें put a side. प्रवेश नहीं पा सकते, भले ही वैशाख-जेठका तपता हार्नले महोदयने यह भी स्वीकार किया है कि महीना ही क्यों न हो? यही है हमारी दासता, जिसे ई०पू० छठी शताब्दीके प्रारम्भिक कालमें आत्रेय तथा आज हम स्वतन्त्र होनेके बाद भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। आचार्य सुश्रुतका भारतीय आयुर्वेदिक विद्यालय अपने इन्हीं अनेक कारणोंसे ही हम अपनी विरासतको भूलते विकासकी चरम अवस्थापर था। इस प्रकार इसके जा रहे हैं। जबिक ज्ञान-विज्ञान एवं औषधीय उपलब्धिमें सार्वभौमिक विकासकी प्रकिया किसी विज्ञ व्यक्तिसे हमारे भारतका कोई शानी नहीं रहा है। इसी सन्दर्भमें छिपी नहीं है। इसकी भव्य सार्वभौमिक उन्नतिको देखकर ही सिकन्दरने ३२३ बी०सी० में भारतपर हम भारतीय आयुर्वेदकी महती उपलब्धियोंको अपने पाठकोंके समक्ष कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंको रखना आक्रमण किया था। ६२३ बी०सी० में पाइथागोरस (चाहेंगे, जिससे हमारी आनेवाली अग्रिम पीढियाँ आयुर्वेदको Pythagores) भी भारतीय शिक्षा ग्रहण करनेके लिये भारतीय थाती माननेमें कम-से-कम माथा-पच्ची न करें भारत आया था। यही सब कारण रहा है कि विश्वके अथवा यह न कह दें कि आयुर्वेद विदेशसे आयी हुई सभी विज्ञ वर्गके लोग इस बातको स्वीकार करते हैं कि विद्या है। इस दिशामें राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत भारतकी भारतके विकासकी रेखा जहाँ समाप्त होती है, वहींसे कुछ निजी संस्थाओंने स्तृत्य कार्य किया है, जो अन्य देशोंका विकास प्रारम्भ होता है। आयुर्वेदके विकासके लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा। डॉ॰ मैकडोनेल (Dr. Macdonell) तथा डॉ॰

कीथ (Dr. Kaeith)-ने भी इस बातको स्वीकार किया

है कि शल्य चिकित्सा आजसे ५००० वर्ष पूर्व अर्थात्

महाभारत-कालमें भी शल्य-विज्ञानकी दुष्टिसे विकासकी

चरम अवस्थापर था। इसका प्रमाण महाभारतके भीष्मपर्वके

आयुर्वेदकी प्राचीनताका सबसे बड़ा प्रमाण विदेशोंमें इसका समादृत स्थान है। आयुर्वेदका अध्ययन विदेशोंमें

सर्वप्रथम ग्रीस तथा मिस्र देशके लोगोंने किया था। ग्रीस

देशमें चिकित्साशास्त्रके जन्मदाता हिपोक्रैटिस

१२०वें अध्यायमें स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है— १०वीं शताब्दीके मध्यकालका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि 'खलीफा हारून और मन्सूर' (Harun उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः॥ And Mansoor)-की आज्ञासे भारतीय चिकित्साशास्त्र सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः। अर्थात् जिस समय भीष्म पितामह शरशय्यापर तथा विभिन्न द्रव्यों, गुणों आदिका अरबी भाषामें पड़े थे, उस समय विंधे हुए बाणोंको निकालनेमें अनुवाद कराया गया था। इसी प्रकार फ्लूजेल (Fluzel) कुशल वैद्योंको बुलाया गया था, जिनके पास अनेक नामक विद्वान्ने भी अपनी पुस्तक किताब-अलिफहरिस्त प्रकारके उपकरण विद्यमान थे। महाभारतसे भी पहले (Kitab-Alfiharist) में इस बातका उल्लेख किया है रामायण-कालमें भी शल्यक्रिया अपनी पराकाष्ठापर कि सुश्रुत-संहिताका अनुवाद अरबी भाषामें किया थी। जैसा कि माँ सीताके उद्विग्नतापरक वाक्योंसे गया है। इस पुस्तकमें यह वर्णन आया है कि हारून अल रसीदको (Harun-Al Rashid) एक घातक शल्यक्रियामें कुशल वैद्योंकी सूचना मिलती है-तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः। व्याधिसे बचा लिया गया था, जिससे प्रसन्न होकर नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः॥ उसे वहीं राजकीय आतुरालयमें नियुक्त कर दिया गया था। उस समय मुस्लिम देशोंके विद्यार्थियोंकी (वा॰रा॰ सुन्दरकाण्ड २८।६) अर्थात् भगवान् श्रीरामके आनेसे पहले ही यह दूढ़ भावना बन गयी थी कि उनका ज्ञान-विज्ञान तबतक अधूरा है, जबतक वे भारतमें आकर यह दुष्ट राक्षसराज रावण अपने तीखे शस्त्रोंसे मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े वैसे ही कर देगा-जैसे एक सम्बन्धित विषयोंका अध्ययन न कर लें। शल्य चिकित्सक गर्भस्थ शिशुको टुकडे-टुकडे कर 'हारून-अल-रशीद' बगदादका राजा था, उसका शासनकाल ७८६ से ८०८ AD था। उस समय देता है। आयुर्वेद विधामें शल्य-क्रियाके साथ-साथ जड़ी-भारतमें 'विजयनगर' और अरबमें 'बगदाद' विद्याका बृटियोंका विशेष महत्त्व था। जड़ी-बृटियोंसे चिकित्सा केन्द्र था। अचार्य चरक और आचार्य सुश्रुतकी आयुर्वेदिक संहिताओंका भाषानुवाद आज भी अरबी

शरीरके टुकड़े-टुकड़े वैसे ही कर देगा-जैसे एक शल्य चिकित्सक गर्भस्थ शिशुको टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

आयुर्वेद विधामें शल्य-क्रियाके साथ-साथ जड़ी-बूटियोंका विशेष महत्त्व था। जड़ी-बूटियोंसे चिकित्सा इतनी विकिसत हो गयी थी कि शल्य-चिकित्साकी प्राय: आवश्यकता ही नहीं रहती। जिस समय मेघनादने ब्रह्मास्त्रका उपयोग किया तो राम, लक्ष्मणसहित अगणित वानरी सेना विंधे हुए बाणोंसे मूर्च्छित पड़ी हुई थी। जाम्बवन्तके कहनेपर हनुमान्जीद्वारा हिमालयपर्वतसे विशल्यकरणी नामक बूटी लायी गयी और उसे सुँघानेमात्रसे सभी होशमें आ गये तथा बाण भी आसानीसे निकल गया—

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम्।

बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः॥

सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः।

आकर चिकित्साशास्त्रका अध्ययन किया करते थे।

कालान्तरमें आयुर्वेदका हास भी हुआ।

निष्कर्षत: इतना कुछ कहनेके पीछे हमारा मूल
उद्देश्य यही है कि हम भारतीय अपनी मूल विरासत
संस्कृति एवं सभ्यताकी गहराईमें जायँ तथा अपने
भारतीय अतीतके गौरवको उसी रूपमें सम्मानपूर्वक
जीवन जीनेकी ओर अग्रसर करें और विश्वमें एक
बार फिर यह सिद्ध कर दें कि हमारा भारत आदि

और आंग्ल भाषामें विद्यमान है। भारतीय आयुर्वेदका

प्रचार-प्रसार बौद्धकालमें बौद्ध भिक्षुककों द्वारा

सिंहलद्वीप, तिब्बत और मंगोलिया आदिमें हुआ, किंत्

[भाग ९२

गन्धेन तासां प्रवरोषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव सम्प्रबुद्धाः॥ गुरु रहा है और अब भी है। किंतु हमारी सोच एवं (युद्धकाण्ड ७४।७३-७४) उद्देश्यको तभी सफल बनाया जा सकता है, जब डॉ० पी०सी० रायने स्वरचित 'भारतीय रसायन भारतका विद्वत्समाज अपने वैदेशिक चश्मेको उतारकर शास्त्र' में स्पष्ट किया है कि अरबनिवासी भारतमें भारतकी मुख्य पृष्ठभूमिसे जुड़नेका प्रयास करेगा और

तभी हमारे भारतका दिव्य पुनर्जन्म सम्भव हो सकेगा।

अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं संख्या ६] अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं (श्रीबृजमोहनजी गोयल) एक सुन्दर सूत्र है आत्मकल्याणका—'जगत्से अपेक्षाएँ हे अर्जुन! सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मींको मुझमें त्यागकर तू न रखे; क्योंकि जगत् उपेक्षाके योग्य है। अपेक्षा यदि केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी रखनी ही है तो जगदीशसे रखे।' अपेक्षाका अर्थ होता शरणमें आ जा। मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू है चाहत, किसीसे कुछ पानेकी आशा रखना और शोक मत कर-उपेक्षाका अर्थ इसके विपरीत है अर्थात् जगत्में किसीसे सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। भी कुछ पानेकी आशा न रखना और निरपेक्षभावसे सबमें अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ भगवद्भाव रखते हुए स्वार्थका परित्यागकर सबकी सेवा (गीता १८।६६) करना। यह चाहत धन-सम्पत्ति, सुविधा, मान-सम्मान, हमारे जीवनमें इच्छाएँ अनन्त हैं, इनका कोई अन्त सुरक्षा आदि किसी भी तरहकी हो सकती है। चाहत नहीं है तथा जितनी इनकी पूर्ति होती है, ये और बढ़ती कामनाका ही दूसरा नाम है। कामना जीवनमें दु:ख तथा ही रहती हैं। इनकी सन्तुष्टि अग्निमें घीका कार्य करती

अशान्तिको जन्म देती है। जब मनुष्य जगत्से इस है। इनकी सन्तुष्टिमें क्षणिक भौतिक सुखोंकी मिथ्या प्रकारकी अपेक्षाएँ रखता है तो उसमें हीनता तथा दीनता अनुभूति तो होती है, पर जीवनमें शान्ति नहीं मिलती। आती है। यह जगत् स्वयंमें अपूर्ण, नश्वर और असमर्थ सच्ची शान्ति इच्छाओंको भोगनेमें नहीं है, इनपर संयम है, सारे नाते-रिश्ते स्वार्थपर आधारित हैं। तो भला बरतनेमें है। अपेक्षाएँ व्यक्तिको भिखारी बनाती हैं, दीन बनाती हैं, व्यक्तिको आत्मसम्मानका भान नहीं रहता। ये अपेक्षाएँ ही हैं, जो सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धोंमें जीवनमें अपेक्षाओंकी परिणति अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, भेद बना देती हैं। परिवारोंका विघटन अपेक्षाको लेकर होता है, बड़ोंका मान-सम्मान, घरकी सुख-शान्ति सब

जगत्से अपेक्षाएँ रख कर क्या सुख-शान्ति मिल पायेगी? अन्तत: निराशा ही हाथ लगेगी? प्रतिशोध, अशान्ति, असन्तोष आदि विकारोंमें होती है, जबिक उपेक्षासे सन्तोष और शान्ति मिलती है तथा आत्मसम्मानकी रक्षा होती है। व्यक्ति सन्तुष्ट होकर अपने प्रभुके प्रति कृतज्ञ बनता है कि हे प्रभो! आपने मुझे इतना सब कुछ दिया है, भला इस जगत्से अब और क्या अपेक्षा रखना और यह जगत् देगा भी क्या? एक बार एक फकीर किसी बादशाहके यहाँ भीख

माँगने गया। उसने देखा कि बादशाह उस समय खुदाकी इबादत कर रहा है और कुछ माँग रहा है। भिखारी उलटे

सर्वसमर्थ और सर्वसंपन्न है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

अपने अहंकी तुष्टिकी अपेक्षाएँ रखता है। वह यह चाहता है कि हर व्यक्ति उसकी परवाह करे, उसे मान-सम्मान दे। यह मान-बड़ाईकी इच्छा, यह लोकैषणा ही अशान्तिका पाँव लौट गया और सोचा—एक भिखारीसे क्या माँगना, प्रमुख कारण है। गीताका अमर सन्देश है कि मनुष्य अब तो उसीसे माँगूँगा, जिससे बादशाह माँग रहा है। अपना स्वाभाविक कर्म फलकी अपेक्षा न रखते हुए करे, अत: यदि कुछ अपेक्षा ही रखनी है तो उसीसे रखनी इससे सफल-असफल होनेपर सुख-दु:खकी अनुभूति चाहिये जो सारे जगत्का निर्माता, नियन्ता है, सर्वशक्तिमान्, नहीं होगी। इससे अकल्पनीय सुख तथा सन्तोषकी अनुभूति

लेकर होता है।

नष्ट हो जाती है और द्वेष तथा प्रतिशोध बढ़ता जाता है,

यहाँतक कि मुकदमेबाजी और खून-खराबातक अपेक्षाओंको

सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति, सखा, मित्र तथा परिवारजनसे

होती है। यही प्रभुकी सच्ची सेवा एवं आराधना भी है।

सामान्य व्यक्ति स्वभावतः अहंवादी होता है। अपने

हीरेकी तरह कीमती कैसे बनें (श्रीसीतारामजी गुप्ता)

हीरा बहुत कीमती होता है, इसमें सन्देह नहीं। होती है। मैं तो केवल मूर्तिके ऊपर लगे अतिरिक्त

पिछले दिनों जेनेवामें हुई नीलामीमें गोलकुण्डाकी पत्थरको हटाकर साफ कर देता हूँ। ठीक, यही

खानोंसे निकला ७६ कैरेटका एक भारतीय हीरा एक

स्थिति मनुष्यकी भी होती है। मनुष्य स्वयंमें ईश्वरकी

अरब अट्रारह करोड रुपयेमें बिका। हीरा अनमोल होता

एक अद्भुत कलाकृति है। जब मनुष्यकी सोच विकृत

है। गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तिकी तुलना भी कई बार हीरेसे हो जाती है, तब ईश्वरीय कलाकृति दब जाती है।

की जाती है। एक व्यक्ति भी हीरा ही होता है यदि उसमें अपनी सोचको सही दिशा अथवा सकारात्मकता प्रदान

करके हम पुन: ईश्वरीय कलाकृतिमें बदल जाते हैं।

हीरेकी तरह कुछ गुण हों, कुछ उपयोगिता हो। वे जिस प्रकार एक कलाकार उचित प्रशिक्षण और

कौनसे गुण हैं, जो एक व्यक्तिको हीरेकी श्रेणीमें ला देते निरन्तर अभ्यासके द्वारा मूर्तिके ऊपर लगे अतिरिक्त

हैं ? यह जाननेसे पहले ये जाननेका प्रयास करते हैं कि

वे कौनसे गुण हैं जो एक हीरेको अनमोल बना देते हैं।

हीरा एक अत्यन्त कीमती पत्थर है, जिसकी

कीमतका निर्धारण अंग्रेजी लेटर 'सी' से प्रारम्भ होनेवाले

तीन शब्दोंसे होता है। वे तीन शब्द हैं कट, क्लेरिटी और

कलर। हीरेकी तराश कैसी है, वह कितना साफ है तथा

उसका रंग कैसा है। इन्हीं तीन बातोंपर हीरेकी कीमत

निर्भर करती है। खानोंसे निकला कच्चा हीरा अनिश्चित

आकारका होता है। उसे आकर्षक बनाने और चमक

प्रदान करनेके लिये तराशना पड़ता है। तभी वह अपेक्षित आभा बिखेर सकता है अन्यथा नहीं।

हीरोंको तराशना कोई बच्चोंका खेल नहीं। हीरे

तराशना एक कला है। सही प्रकारसे तराशे गये हीरोंकी

ही बाजारमें अच्छी कीमत मिलना सम्भव है। इसके अलावा हीरेकी पारदर्शिता और रंगका भी उसकी

कीमतके निर्धारणमें महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन

हीरेकी पारदर्शिता और रंग उसे तराशनेके बाद ही

उभरकर सामने आ पाते हैं। प्रश्न उठता है कि किसी

मनुष्यको हीरेकी तरह कैसे तराशा जाय कि वह भी

हीरेकी तरह ही अनमोल बन जाय?

एक मूर्तिकारसे उसके एक प्रशंसकने पूछा कि वह इतनी सुन्दर मूर्तियाँ कैसे बना लेता है? मूर्तिकारने

रहिमन हीरा कब कहै लाख टका मेरो मोल॥ अर्थात् सद्गुण ही व्यक्तिको हीरेकी तरह मूल्यवान्

बनाते हैं, अत: मूल्यवान् बननेके लिये व्यक्तिमें मानव-जमात्रविद्धिmिष्ठां इस्वित्वोऽस्रिस्में hसहस्रेणेवहीट. मुकुखhaस्त्रयों का लांस्रिस्धित्वो हिंVE BY Avinash/Sha

पत्थरको हटाकर साफ करके एक सुन्दर कलाकृति

बनानेमें कुशलता प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार हम

भी उचित प्रशिक्षण और निरन्तर अभ्यासके द्वारा

अपने नकारात्मक भावोंसे छुटकारा पाकर प्रभावशाली

व्यक्तित्वका विकास कर सकते हैं। नकारात्मक भावोंसे

छुटकारा पानेका अर्थ है सकारात्मकताका विकास।

क्लेशोंकी समाप्ति अथवा नकारात्मक भावोंसे छुटकारा

ही व्यक्तिकी वास्तविक तराश है। इससे व्यक्तिके मनमें हिंसाकी समाप्ति होकर करुणा और मैत्रीका

विकास होता है और तभी उसका हृदय संकीर्णताका

त्यागकर विस्तृत होता है, अधिकाधिक संवेदनशील

बनता है। इसमें पारदर्शिता आती है और वह आकर्षक

लगने लगता है। यही पारदर्शिता और आकर्षण उसे

समाज और राष्ट्रके लिये उपयोगी और हीरेसे भी

बड़े बड़ाई न करें बड़े न बोलैं बोल।

कीमती बना देता है, इसमें सन्देह नहीं।

संत कवि रहीमदासजी कहते हैं-

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि

िभाग ९२

भगवानुके अवतार लेनेका कारण संख्या ६] भगवान्के अवतार लेनेका कारण (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) भगवानुको अवतार लेना पडे, ऐसी बात नहीं है; ही दुसरा नाम 'नन्द' है। क्योंकि भगवान् सर्वथा पूर्ण, सर्वशक्तिमान् और स्वतन्त्र इससे यह मामूल होता है कि भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी प्रेममयी लीलाका रस प्रदान करके और हैं। वे अपनी मौजसे अवतार लेते हैं। शास्त्रोंमें भगवान्के अवतारके तीन हेतु बताये गये उनके प्रेम-रसका स्वयं आस्वादन करके उन भक्तोंको हैं—(१) साधुओंका परित्राण, (२) दुष्टोंका विनाश, आह्लादित करते हैं। यह काम बिना अवतार लिये पूरा (३) धर्मकी स्थापना। इनमें-से दुष्टोंका विनाश और नहीं हो सकता। धर्मकी स्थापना तो भगवान् बिना अवतार लिये भी कर भगवान्की एक-एक लीलामें अनेक रहस्य भरे सकते हैं। यदि ये दोनों भगवानुके अवतारमें खास कारण रहते हैं। वे एक ही लीलामें बहुतोंकी लालसा पूरी करते होते, तो इस समय भी भगवानुका अवतार होना चाहिये रहते हैं। उनकी प्रेममयी लीलाका रहस्य बड़े-बड़े था। धर्मका ह्रास इस समय कम नहीं है और दृष्टोंकी बुद्धिमान् नहीं समझ पाते। औरोंकी तो कौन कहें, भी कमी नहीं है। साक्षात् ब्रह्माजीको संदेह हो गया। यदि उनकी लीलापर विचार करें, तो मालूम होता अघासुरको मारकर श्रीकृष्ण भगवान् वनमें अपने है कि भगवान्का अवतार अपनी रसमयी लीलाके द्वारा बाल सखाओंके बीचमें बैठकर भोजन करने लगे, तो भक्तोंको रस प्रदान करनेके लिये और स्वयं उनके प्रेमका उस लीलाको देखकर ब्रह्माजी चिकत हो गये। वे सोचने रस लेनेके लिये ही होता है। धर्मकी स्थापना और लगे कि—'साक्षात् परमेश्वर क्या कभी इन गँवार दुष्टोंका विनाश तो उनका आनुषंगिक कार्य है। उसमें ग्वालोंके बालकोंकी जूठन खा सकते हैं! यह क्या है? भी प्रकारान्तरसे साधुओंका हित भरा रहता है। यह बालक अपनी खानेकी वस्तु दुसरेको देता है और साधु वही है, जो भगवानुको प्राप्त करना चाहता दूसरे बालककी लायी हुई खानेकी वस्तुको स्वयं ग्रहण है, अपने जीवनको भगवत्परायण बनानेकी साधनामें करता है।' लगा रहता है। किसी प्रकारका भेष बना लेनेका नाम इस मोहमें पडकर बह्माजी भगवानुकी परीक्षा करनेके लिये बछड़ोंको उठाकर ले गये। इधर बालकोंका मन साधु नहीं है। भगवान् जब अवतार लेते हैं, तो साधु पुरुषोंके भगवान्से हटकर बछड़ोंकी ओर गया। वे बोले—'बछड़े घरोंमें ही लेते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारपर ही दिखलाई नहीं दे रहे, कहीं दूर चले गये हैं।' भगवान् यह कैसे सहन कर सकते हैं कि उनका प्रेमी किसी और-को विचार कीजिये। उनका प्राकट्य वसुदेवजीके घरमें और माता देवकीके उदरसे हुआ। जो स्वयं प्रकाश और सर्वत्र देखे, उनको छोड़कर उसका मन दूसरी जगह चला जाय? बसनेवाला है, उसे 'वसुदेव' कहते हैं और प्रकाशमयी अतः उन्होंने सखाओंसे कहा—'मित्रो! तुम लोग यहीं रहो, मैं अभी बछड़ोंको ले आता हूँ।' ब्रह्मविद्याका नाम 'देवकी' है। इससे यह मालूम होता है कि भगवान् उन साधु पुरुषोंके घर जन्म लेते हैं, जो श्यामसुन्दर उधर गये और ब्रह्माजी उन बालकोंको सर्वथा विशुद्ध और तत्त्वज्ञानी हैं, परन्तु उनको अपनी बेहोश करके वहाँ से उठाकर पर्वतकी गुफामें रख आये। भगवानुसे मन हटते ही ग्वालबालोंको एक वर्ष उनसे लीलाका, अपने प्रेमका रस प्रदान नहीं करते। अपनी प्रेममयी लीलाका रस प्रदान करनेके लिये अलग होना पडा। वे माता यशोदाकी गोदमें पधारते हैं। जो यश यानी प्रेम-इधर गायें तथा गोप-गोपियोंके मनमें यह लालसा बढ रही थी कि क्या कभी वे दिन आयेंगे कि जब रस प्रदान करे, उसको यशोदा कहते हैं और आनन्दका

एवं बछड़े बने। उन्होंने गायोंको प्रेमरस प्रदान किया तथा उनका प्रेमरस दुग्धरूपमें पान किया। गोप-गोपियोंकी गोदमें खेलकर उनको पुत्र-स्नेहका रस प्रदान किया। एक वर्षतक वे उस मधुर प्रेमरसका आस्वादन करते रहे। जब ब्रह्माने देखा कि ब्रजका काम तो उसी प्रकार चल रहा है, श्यामसुन्दर पहलेकी भाँति ही उन ग्वाल-बालोंके साथ भोजन कर रहे हैं और खेल रहे हैं तथा जिनको मैं चुरा लाया था, वे सब गुफामें सो रहे हैं, तब उनको भगवान्की महिमाका दर्शन हुआ और उनका समस्त अभिमान गल गया।

श्यामसुन्दर यशोदा मैया की भाँति हमारे स्तनोंका



एक ही लीलामें भगवान्ने अपने ऐश्वर्य और माधुर्यका प्रदर्शन किया। यह काम बिना अवतारके कैसे

हो सकता था? एक ओर ब्रह्माके अभिमानका नाश, उसीके साथ-साथ ग्वाल-बालोंको चेतावनी और गायों

एवं गोप-गोपियोंकी प्रेम-लालसा की पूर्ति। यह काम

तो अवतार लेकर ही किया जा सकता है। जब भगवान् श्रीकृष्ण छ: दिनके हुए थे, उस

समय भी उन्होंने एक ही साथ ऐश्वर्य और माधुर्य तथा न्याय और दयालुताका भाव दिखाया था। पूतना, जो



घोर पापिनी और बालकोंका नाश करनेवाली थी, जब

स्तन श्यामसुन्दरके मुखारविन्दमें दे दिया, तब भगवान्ने उसके मातृ-स्नेहकी रक्षा करनेके लिये तो उसका दुध पिया; क्योंकि वह उनके प्राण लेनेके लिये आयी थी, इसलिये दूधके साथ-साथ उसके प्राण भी पी लिये। भगवान्के स्पर्शसे उसका कपट नाश हो गया और वह

अपने असली रूपमें आ गयी। उसके सारे शरीरमें सुगन्ध हो गयी। भगवान् उसके शरीरपर खेलने लगे और उसे

माताकी गति प्रदान की। इस प्रकारकी लीला भगवान् बिना अवतारके कैसे

कर सकते थे? उनकी हरेक लीलामें अनन्त रस और अनन्त रहस्य भरा हुआ है ? उनके प्रेमी भक्त ही उसका रस ले सकते हैं। भगवान्का अवतार नित्य है। उनका लीलाधाम,

उनके माता-पिता, उनके सखा और सखियाँ सभी चिन्मय प्रेमसे ही बने हुए हैं। उनमें कोई भी भौतिक वस्तु नहीं हैं। भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें भौतिक भाव नहीं

रहता। भगवान्के प्रेमी भक्तोंका आज भी उनकी दिव्य लीलामें प्रवेश होता है और वे उनके प्रेम-रसका

आस्वादन करते रहते हैं। यदि भगवानुका अवतार न

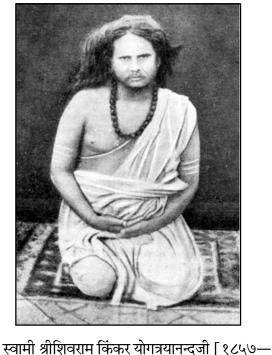
होता, तो इसकी पूर्ति नहीं हो सकती थी।

स्वामी शिवरामिकंकर योगत्रयानन्दजी

(पं० श्रीमहेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)

स्वामी शिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी

सम्बन्ध रहा है। इसने स्वामीजीके जीवनमें अनेकों



संख्या ६]

सन्त-चरित

पिताका नाम रामजीवन सान्याल था। लडकपनसे ही इनकी प्रतिभा और इनके योगभ्रष्ट पुरुष होनेके लक्षण दीखने लगे थे। चौदह-पन्द्रह वर्षकी उम्रमें इन्होंने बँगला, अँगरेजी और संस्कृत पढ़ ली और बिना ही गुरुकी सहायताके वेद, वेदान्त, षड्दर्शन, ज्योतिष और पुराणादि समस्त शास्त्रोंके पण्डित हो गये। पाश्चात्य दर्शन और विज्ञानका सम्यक्

१९२७ ई०]-के गृहस्थाश्रमका नाम था शशिभूषण सान्याल।

जन्मस्थान था हावड़ा जिलेके वराहनगरका गंगातीर। इनके

अध्ययन करके उनकी भी योग्यता प्राप्त की। फिर साधनमार्गमें प्रवेश करके कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग तीनोंका साथ ही अभ्यास किया। योगाभ्याससे आप समाधिस्थ हो जाते। आश्चर्यकी बात है कि यह गृहस्थमें रहते हुए ही आपने किया। आपके धर्मपत्नी और तीन पुत्र थे। चिकित्सा-विज्ञानमें आपकी बड़ी पहुँच थी। कलकत्तेके केम्बल मेडिकल स्कूलमें कुछ दिनोंतक पढ़े थे, फिर अपनी प्रतिभासे एलोपैथी, होमियोपैथी, बायोकेमी और आयुर्वेद-विज्ञानके पण्डित हो गये। इनकी विशिष्ट प्रतिभाकी बात अनन्याश्चितयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ —इस श्लोकके अर्थका स्वामीजीने अपने जीवनमें

आश्चर्यमयी घटनाएँ देखी हैं। गीताके नवम अध्यायके—

साक्षात्कार किया था। त्यागी, संन्यासी, संत अनेकों हैं, किंतु स्त्री-पुत्रादिके

साथ गृहस्थाश्रममें रहकर भगवान्पर निर्भरशील हो कुछ भी उपार्जन न करते हुए अनन्य शरणागत होनेपर वह अनन्त करुणामय दयासागर भगवान् उस निर्भर भक्तके अभावोंको किस प्रकार दूर करते हैं, स्वामीजीका जीवन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। चिकित्सामें स्वामीजी बड़े निपुण थे, यहाँतक कि बड़े-बड़े डॉक्टर, कविराज जिन रोगियोंको असाध्य बताकर छोड़ चुके थे, ऐसे अनेकों रोगी आपने अच्छे कर दिये। शास्त्रानुसार सदाचारका पालन, आहारशुद्धि आदिका परिवारके सभी लोग पालन करते थे।स्वामीजी जिस कोठरी में साधन-भजन करते, शौचादिको छोडकर अन्य समय उस कोठरीसे कभी बाहर नहीं निकलते, न किसीसे बात-चीत ही अधिक करते। वह कोठरी सदा

रहती, सर्वदा आनन्दमय हास्यमय! स्वामीजीकी माताके बीमार होनेपर उन्हें काशी ले जाया गया और उनका काशीवास होनेपर स्वामीजीने लौटकर वराहनगरमें एक छोटेसे मकानमें रहना शुरू किया। अर्थोपार्जनकी चेष्टा छोड़ ब्राह्मणकी अयाचित भिक्षावृत्तिका अवलम्बनकर और पूर्णरूपसे भगवानुके चरणोंका आश्रय ग्रहणकर स्वामीजी स्त्री-पुत्रादिसहित आनन्दसे रहने लगे।

ही सात्त्विक सुगन्धसे परिपूर्ण रहती। स्वामीजीकी बड़ी

ही मनोरम मधुर मूर्ति थी । उन्हें जो कोई भी आसनपर बैठे

देख लेता, मुग्ध हो जाता। वहाँसे दृष्टि हटानेकी इच्छा न

करता। मुखमण्डलपर कभी किसी चिन्ताकी रेखा नहीं

वराहनगर कलकत्तेसे उत्तर तीरपर है। स्वामीजीके घरका आँगन सदा सर्द रहता था। स्वामीजी एक कोठरीमें कम्बल बिछाकर बैठे ग्रन्थादि देखा करते, साधन-भजनके

कहनेपर शायद आजकलके लोग विश्वास नहीं करेंगे, समय दरवाजा बन्द कर लेते। दोपहरको एक बार दरवाजा परंतु इस संक्षिप्त जीवनीके लेखकका उनके साथ जागतिक खोलते। भोजनके लिये कोई दे जाता तो खा लेते, नहीं तो

भाग ९२ फिर दरवाजा बन्द करके अपने काममें लग जाते। और भी बहुत-से लोग स्वामीजीके पास आते और वेदान्तकी एक बार घरमें अन्न नहीं रहा। साध्वी स्त्रीने किसी अद्भुत व्याख्या सुनते। स्वामीजीने १५-१६ वर्षकी उम्रमें ही दण्डी स्वामी प्रकार दो-तीन दिन तो काम चलाया, पर अन्तमें उसके श्रीशिवरामानन्दजीसे दीक्षा ली, इसीलिये उन्होंने गुरुदेवकी पास कुछ नहीं रहा। इसी समय सतीशचन्द्र नामक एक युवकने स्वामीजीकी सेवा करनी चाही। सतीशका घर आज्ञा लेकर अपना नाम शिवरामिकंकर योगत्रयानन्द वराहनगरमें ही था। वह शिक्षित युवक था। पूर्वजन्मके रखा। स्वामीजीकी भक्ति, ज्ञान और योगमें समान गति संस्कारवश वैराग्यके उदय होनेसे उसने यह ब्राह्मणका थी। काशीमें बम्बईके अटर्नी श्रीयुत भाई शंकर आये सेवाव्रत ग्रहण किया। स्वामीजीके घरमें कुछ भी नहीं था। और स्वामीजीके द्वारा ॲंगरेजीमें वेदान्ततत्त्वको सुनकर न एक पैसा था। बच्चे आहारके लिये रो रहे थे। ब्राह्मणीका मुग्ध हो गये। बम्बईमें देहत्यागके समय भाई शंकरजीने अपने वसीयतनामेमें कई हजार रुपये स्वामीजीको दिये यह भी साहस नहीं कि वह जाकर स्वामीजीसे कुछ कहती। ऐसी स्थितिमें सतीश आया और उसकी लायी हुई सामग्रीसे थे। स्वामीजीके पास बम्बईसे रुपये आये और उन्होंने रसोई बन गयी। सतीश इसी प्रकार उधार करके दाल-उसी समय किसी ब्राह्मणको कन्यादानके लिये, किसीको चावल लाने लगा। सन्ध्याके समय दो-चार सज्जन ऋणमुक्तिके लिये सब दे डाला। सोनारपुरासे भदैनीमें आकर रहने लगे। वहाँ स्वर्गीय काश्मीरनरेश आये स्वामीजीसे शास्त्रादि सुनने और शंका-समाधान करने आते, उन्होंने स्वामीजीसे कहा कि 'आप चिकित्साके द्वारा कुछ और स्वामीजीको काश्मीर ले जानेके लिये आग्रह करने उपार्जन करने लगें तो अच्छा हो।' स्वामीजीने कह दिया लगे। काशीके राजा मोतीचन्द तो स्वामीजीके भक्त थे कि 'भगवानुकी सेवाके सिवा हम कुछ भी नहीं करना ही। 'कल्याण' के लेखक स्व० श्रीयुत नन्दिकशोर चाहते। भगवान् खानेको देंगे तो खायँगे नहीं तो सब लोग मुखोपाध्यायके पिता श्रीयुत कालीपद मुखोपाध्याय रिटायर्ड उपवास करके रहेंगे।' एक दिन ऐसा हुआ कि घरमें कुछ सब जजने स्वामीजीसे शिष्यत्व ग्रहण किया। कालीपद भी नहीं रहा। रसोई नहीं बनी बच्चे उपवासी रहे। इतनेमें बाबूने स्वामीजीके लिये राजघाटमें एक मकान बनवा ही कालीकृष्णदत्त नामक एक सज्जन जो वराहनगरमें ही दिया। स्वामीजी उसी मकानमें रहने लगे और खर्चके रहते थे और स्वामीजीको अपना गुरु मानते थे, दौडे हुए लिये सौ रुपये मासिक कालीपद बाबू देने लगे। आये और स्वामीजीके चरणोंमें दो रुपये रखकर प्रणाम तदनन्तर राधिकाप्रसाद राय इंजीनियर कलकत्तेमें तीन किया। पूछनेपर बोले कि 'मैं अपने ऑफिसमें काम कर सौ रुपया मासिक भाड़ेपर मकान लेकर स्वामीजीको रहा था, दो बजेके लगभग हठात् हवामेंसे मेरे कानमें यह कलकत्ते ले गये। कलकत्तेमें हल्ला-गुल्ला विशेष आवाज आयी कि तुम जिनको अपना गुरु मानते हो, वे होनेके कारण स्वामीजी उत्तरपाडा गंगातीरपर चले आज सपरिवार भूखे हैं। मैं सहम गया और उसी वक्त गये। मुजफ्फरपुरके वकील बाबू नगेन्द्रनाथ चौधरी मालिकसे छुट्टी लेकर नावसे यहाँ चला आया।' सतीशको खर्च देने लगे। इसके बाद यतीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रुपये दिये गये। सामग्री आयी और रसोई बनी। इसी स्वामीजीकी सेवा करने लगे। कहनेका मतलब यह कि भगवान्ने अपने निर्भर भक्तका योगक्षेम बड़ी खूबीसे प्रकार एक दिन कुछ मजदूर बहुत-सा चावल, दाल, आटा, घी, फल, तरकारी आदि रख गये। कुछ दिनों बाद बालीके चलाया। यद्यपि स्वामीजीको सांसारिक योगक्षेमकी जमींदार श्रीराजेन्द्र सान्याल स्वामीजीको सपरिवार कलकत्ते कोई परवा नहीं थी! ले गये और आवश्यक खर्च देने लगे। इसके बाद राजेन्द्र स्वामीजी अगाध पण्डित, सिद्धयोगी, महान् ज्ञानी बाबूके सहायता बन्द कर देनेपर महेन्द्रदास नामक एक और परम भक्त थे। उनके जीवनकी हजारों घटनाएँ हैं। कन्ट्राक्टर स्वामीजीके इच्छानुसार उन्हें काशी ले गये और मैंने संक्षेपमें केवल भगवान्पर निर्भर रहनेके कारण उन्हें वहाँ सोनारपुरामें मकान भाड़ेपर लेकर स्वामीजीको टिका कोई कष्ट नहीं हुआ, इतनी ही बात दिखलायी है। वियानकार्रिमों छिरिङ्क्रिए इंडे ह्नए हो भिर्मुङ ग्रिश्वर ग्रीहर जिल्ला कार्य के किया निष्य के स्वापक करें हो है संख्या ६] गोमुत्रका चमत्कार गोमूत्रका चमत्कार [गोमूत्र एवं वनौषधि-चिकित्सासे गुर्देके रोगोंमें आश्चर्यजनक लाभ] (श्रीभगवतीलालजी हींगड) हम गुर्देके बारेमें बहुत कम जानते हैं। इसे अंग्रेजीमें सम्भव हुआ है, ऐसे रोगियोंपर गोमूत्र-चिकित्साका चमत्कारी किडनी, हिन्दीमें गुर्दा और संस्कृतमें वृक्क कहा जाता है। लाभ हुआ है। अगर किडनीमें सूजन है या उसपर रक्त किडनीका मुख्य कार्य है—रस एवं रक्तमें मिले विजातीय जम गया है तो इसका इलाज आप गोमूत्र-चिकित्सा-और अनावश्यक द्रव्यों एवं विकारोंको मूत्र-मार्गद्वारा पद्धतिसे किसी अनुभवी वैद्यसे करा सकते हैं। शरीरसे बाहर निकालना। किडनी खराब होनेके प्रारम्भिक लक्षण हैं—हाथ-पैर और चेहरेपर सूजन आना, पेशाब कम आना या जल्दी-किडनी वास्तवमें रस-रक्तका शुद्धीकरण करनेवाली एक प्रकारकी ग्यारह से०मी० लम्बी काजुके आकारकी जल्दी आना तथा ब्लड प्रेशर बढ़ जाना, कमर एवं पीठमें दर्द छलनी है। जो पेटके पृष्ठभागमें मेरुदण्डके दोनों ओर बना रहना, हाथ-पैर ठण्डा रहना, लीवर और तिल्लीमें दर्द, अम्लपित्त, सिर तथा गर्दनमें पीड़ा, भूख नष्ट होना, बहुत स्थित होती है। किडनीका विशेष सम्बन्ध हृदय, फेफड़े, यकृत् और प्यास लगना, कब्ज रहना आदि। ये सभी लक्षण सभी मरीजोंमें विद्यमान हों—यह जरूरी नहीं है। अगर ऐसा हो तो तिल्लीके साथ होता है। ज्यादातर हृदय एवं वृक्क परस्पर सहयोगके साथ कार्य करते हैं। आजकल किडनीके खुन और पेशाबकी जाँच करायें। अगर पेशाबमें प्रोटीन हो तो रोगियोंकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका इसका मतलब है कि किडनीमें सूजन है। खूनकी जाँच मुख्य कारण मटर, सेम, दालें-जैसे प्रोटीनयुक्त आहारका करानेपर क्रेटेनिन एवं यूरिया दोनों बढ़े हुए हों तो सम्भव है अतिरेक; मैदा, शक्कर, बेकरीकी चीजोंका अधिक प्रयोग; कि आपकी किडनी फेल हो गयी हो या होनेवाली हो। चाय, काफी-जैसे उत्तेजक पेय, शराब एवं ठण्डे पेय, गोमुत्र-चिकित्सा किडनी-रोगके इलाजमें कारगर सिद्ध हुई आधुनिक एलोपैथिक दवाइयोंका ज्यादा प्रयोग, जीवनी है। इससे गुर्देका इलाज तो होता ही है, साथ ही इस इलाजसे शक्ति एवं रोगप्रतिकारक शक्तिका अभाव, आँतोंमें संचित गुर्देकी कार्यक्षमता भी बढ़ जाती है। किडनी फेल होनेपर मल, शारीरिक परिश्रमका अभाव, अशुद्ध हवा एवं उच्च किडनीमें पायी जानेवाली खुनकी नलियाँ बन्द हो जाती हैं, रक्तचाप तथा हृदयरोगोंमें लम्बे समयतक की जानेवाली उन्हें गोमूत्र-अर्क या पंचगव्य घृत ठीक कर सकते हैं। दवाइयोंका सेवन, आयुर्वेदिक परंतु अशुद्ध पारेसे बनी किडनी खराब होनेपर कुछ परहेज रखना भी दवाइयोंका सेवन; तम्बाकू एवं ड्रग्सके सेवनकी आदत; आवश्यक हो जाता है। जैसे कि ऐसा खाना नहीं खाये जिसमें दही, तिल, नया गुड़, मिठाई, वनस्पति, घी, श्रीखण्ड, प्रोटीनकी मात्रा अधिक हो, यथा—दाल, पनीर, अण्डे, मांसाहार, फ्रूटजूस, इमली, टोमैटो-केचप, अचार, केरी, मांस, चना, सोयाबीन, राजमा आदि। रसीले फल भी नहीं खटाई आदि सब किडनी-दर्दके कारण हैं। किडनीका खाये, जैसे—मौसमी, अनार, अंगुर, नारंगी, इमली, केरीका

इलाज प्राय: सम्भव नहीं होनेसे दूसरे गुर्दे लगाने पड़ते हैं, अचार आदि। सब्जियाँ जो भी खाये उसे काटकर कुछ देर लेकिन यह जरूरी नहीं है कि जो गुर्दे लगाये जा रहे हैं, गरम पानीमें रख दे फिर पानीसे निकालकर पकाये और वे आपके शरीरको सहन हो पायँगे। इसपर खर्च भी पानी फेंक दे तथा नमक कम काममें ले। फलोंमें सेव और लगभग छ:से आठ लाख रुपये होता है, जो हरेकके पपीतेका सेवन कर सकते हैं। गेहँकी जगह जौकी रोटी वशकी बात नहीं है। अगर किडनीका प्रत्यारोपण करा भी खाये। जहाँतक हो सके, मौसमी बीमारीसे बचे। सर्दीमें

ज्यादा देर बाहर न रहे, गर्मीमें धूपसे बचे, पानी भी पिये तो लिया जाय तो इसमें हमेशा इन्फेक्शन होनेका डर बना रहता है। पर निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। गुर्देसे उबालकर ठण्डा करके काममें ले। समय-समयपर खुन सम्बन्धित बीमारीका इलाज गोमूत्र-चिकित्सा एवं वनौषधिसे एवं पेशाबकी जाँच भी करानी चाहिये।

साधनोपयोगी पत्र (१) प्रकार और किस कार्यमें हो रहा है—इसपर विचार नवीन प्रारब्ध करनेसे स्पष्ट पता लगता है कि विज्ञानने जहाँ यातायात, प्रिय महोदय! संवादवहन आदिमें सुविधा कर दी है, वहाँ उसने सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें मानवजगत्के संहारमें भी बहुत बड़ी सहायता की है। इसका कारण विज्ञान नहीं है—इसका कारण है मनुष्यकी देरी हुई, कृपया क्षमा करें। निर्धनता अवश्य प्रारब्धवश ही प्राप्त होती है। परंतु मानसिक वृत्ति। उसी परमाणु शक्तिसे-यदि जगत्के नवीन उत्कट पाप-पुण्यद्वारा नवीन प्रारब्ध भी बनाया जा हितकी इच्छा हृदयमें भरी हो तो बड़ा हित-साधन हो सकता है। इस सिद्धान्तके अनुसार धनकी इच्छासे भजन सकता है; और मनमें द्वेष-द्रोह तथा वैर-विरोध रहनेके

करनेवाले प्राणियोंको इसी जन्ममें धन प्राप्त होना भी असम्भव नहीं है। किंतु ऐसा हो तभी सकता है, जब उनका वह कर्म पूर्व प्रारब्धकी अपेक्षा भी विशेष प्रबल हो। वैराग्य पूर्व-संस्कारोंसे भी हो सकता है और इस जन्मके सत्संगादि विशेष साधनोंके द्वारा भी। शेष भगवत्क्रपा। (२) उन्नतिकी ओर या अवनतिकी ओर

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि 'जगतुके बडे-बडे विचारशील विद्वानोंने

यह माना है कि मानव-समाज उत्तरोत्तर उन्नत हो रहा है; फिर आप कैसे कहते हैं कि वर्तमानमें मानवसमाजकी

उन्नित नहीं हो रही है, बल्कि वह बडी तीव्र गतिसे अवनतिके गर्तमें गिरा जा रहा है।' इसके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें आपको पहले पत्रमें लिखी जा चुकी हैं। आज जो लोग जगत्में उत्तरोत्तर उन्नति देख रहे हैं, उनका लक्ष्य सदाचार, सद्भाव तथा सत्कर्म एवं सबके

मूल श्रीभगवानुकी ओर नहीं है और न वे भगवानुकी प्राप्तिको मानवजीवनका मुख्यतम लक्ष्य ही मानते हैं।

उनका लक्ष्य है—भौतिक उन्नति। आज जो तार, बेतारका तार, रेडियो, मोटर, हवाईजहाज, विद्युत्-शक्ति और परमाणु-शक्ति आदिके आविष्कारसे मनुष्यकी

शक्ति बढ़ गयी है, इसीको वे उन्नति मानते हैं। अवश्य

ही विज्ञानकी उन्नित हुई है; पर उसका प्रयोग किस

भोगकामना जब बढ़ जाती है, तब मनुष्य अधर्मका

आश्रय लेकर पाप-कर्ममें लग जाता है और परिणामस्वरूप जगत्की अधोगति हो जाती है। आजका जगत् जिस सभ्यताकी ओर बढ़ रहा है, उसमें असत्य, लूट-पाट, चोरी, व्यभिचार, अनाचार,

कारण उसीके प्रयोगसे लाखों जापानी कुछ ही क्षणोंमें कालके गालमें पहुँच गये और आज भी सारा जगत्

उसकी भयानकतासे सशंकित है। इसपर भी सुना यही

जाता है कि अमेरिका और रूसके वैज्ञानिक उससे भी

अधिक भयानक किसी शक्तिके आविष्कारमें लगे हैं।

मन केवल दैवी सम्पत्तियोंका ही निवासस्थान बन जाय.

सभी सबका सुख तथा कल्याण चाहने लगें। घृणा और द्वेषके बदले प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें आत्मीयता और प्रेम

आ जाय, स्वार्थ और अधिकारकी जगह त्याग और

कर्तव्यको स्थान मिल जाय, एवं क्रोध तथा हिंसाकी

जगह क्षमा और साधुता ग्रहण कर ले। जिस युगमें ऐसी

बातें होती हैं, वही युग उन्नतिका युग माना जाता है;

इसीलिये हिंदू-शास्त्र ऐसे युगको सत्ययुग कहते हैं और

यह कालचक्रके अनुसार अपने-आप आया करता है।

इस समय कलियुगका प्रारम्भ है और शास्त्रोंके अनुसार

अवनतिका समय है। सत्ययुगमें जहाँ धर्मके चार पाद होते हैं, वहाँ कलियुगमें केवल एक पाद रह जाता है।

सत्ययुगमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति धर्मानुष्ठानकी ओर रहती है और कलियुगमें भोगोंकी ओर रहती है।

वस्तृत: उन्नित तभी समझी जाती है, जब मनुष्यका

पता नहीं, इसका कितना भीषण परिणाम होगा।

संघ-शक्तिकी भी बड़ी आवश्यकता है और अपने

स्थानपर उसे भी अवश्य व्यवहृत करना चाहिये।

शेष भगवत्कुपा।

बतलाती है और 'जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः' इस भगवद्वाक्यके अनुसार तमोगुणी वृत्तिमें स्थित लोग नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इस समय जगत् अवनतिकी ओर कल्याण

भद्रा रात्रिमें २।८ बजेसे।

९।१२ बजे।

भौमप्रदोषव्रत।

दिनमें १२।३५ बजेसे।

श्राद्धादिकी अमावस्या।

सिंहराशि सायं ५।३२ बजेसे।

दक्षिणायन प्रारम्भ, वर्षाऋतु प्रारम्भ।

वृश्चिकराशि प्रातः ७।५८ बजेसे।

धनुराशि सायं ५।१७ बजेसे।

श्रीस्कन्दषष्ठीवृत

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ३।७ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चंद्रोदय रात्रिमें

कुम्भराशि दिनमें ८।५९ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमेंमें ८।५९ बजे।

मेषराशि रात्रिमें ३। २४ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ३। २४ बजे,

वृषराशि दिनमें ८। ५५ बजेसे, योगिनी एकादशीव्रत (सबका),

उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, आषाढ् शुक्लपक्ष

भद्रा दिनमें १। १६ बजेसे रात्रिमें १२। ८ बजेतक, मिथुनराशि

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें १२। १० बजेसे रात्रिमें ११। ४ बजेतक, श्रीवैनायकी

कन्याराशि रात्रिमें ८। ३० बजेसे, कर्कसंक्रान्ति दिनमें ९। २९ बजे,

भद्रा रात्रिमें ७। २२ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें ७। २१ बजे।

भद्रा दिनमें ७। ३८ बजेतक, मूल रात्रिमें २।५० बजेसे।

शीतलाष्टमी, पुनर्वसुका सूर्य रात्रिमें ८। २० बजे।

भद्रा प्रातः ६।५७ बजेसे सायं ६।२८ बजेतक।

कर्कराशि दिनमें ३।९ बजेसे, अमावस्या।

श्रीजगदीश रथयात्रा, मूल रात्रिमें ७। ३ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल समाप्त दिनमें ४।० बजे।

भद्रा सायं ६।१२ बजेसे, **तुलाराशि** रात्रिमें १।८ बजेसे।

एकादशीव्रत (सबका), मूल दिनमें ३।३१ बजेसे।

प्रदोषव्रत, मुल समाप्त रात्रिमें ७। २९ बजे।

भद्रा प्रातः ५।४८ बजेतक, पुष्पका सूर्य रात्रिमें ८।४७ बजे।

भद्रा रात्रिमें १०।३२ बजेसे, मकरराशि रात्रिशेष ४।३५ बजे।

lgg/dharmai ং∤ լ**ΜΑΦΕ W**kᡯ**HՎ-Թ**VE BY Avinash/Sh

भद्रा दिनमें ११। ३३ बजेतक, पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, खण्डचन्द्रग्रहण

भद्रा प्रात: ५। ३५ बजेसे सायं सायं ५। ५६ बजेतक, श्रीहरिशयनी

मूल समाप्त रात्रिमें ३। २९ बजेसे।

व्रतोत्सव-पर्व

२ ,,

٤ ,,

ξ,,,

9 ,,

6 11

9

१३ ,,

दिनांक

१४ जूलाई

१५ "

१६ "

26 "

26 "

१९ "

२० "

28 "

२२ "

२३ "

२४ "

3 ,,

४ ,,

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि नक्षत्र दिनांक

मकरराशि रात्रिमें ९।१७ बजेसे।

प्रतिपदादिनमें ११। ८ बजेतक शुक्र पू०षा० दिनमें २। ३७ बजेतक २९ जून

द्वितीया 🕠 १।९ बजेतक 30

शनि उ०षा० सायं ५ । १५ बजेतक

तृतीया 🦙 ३।७ बजेतक रवि

श्रवण रात्रिमें ७।४९ बजेतक |१ जुलाई

चतुर्थी 🕖 ४।५३ बजेतक सोम |

धनिष्ठा " १०।१० बजेतक

पंचमी सायं ६।२२ बजेतक मंगल शतभिषा " १२।११ बजेतक

षष्ठी रात्रिमें ७।२२ बजेतक बुध पू०भा० 😗 १। ४४ बजेतक

सप्तमी 🕠 ७।५४ बजेतक ग्रु उ०भा० '' २।५० बजेतक

रेवती <table-cell-rows> ३। २४ बजेतक शुक्र

अष्टमी 🗤 ७ ।५५ बजेतक

नक्षत्र

पुष्य रात्रिमें ७। ३ बजेतक

आश्लेषा सायं ५ । ३२ बजेतक

मघा दिनमें ४। ० बजेतक

अश्वनी " ३। २९ बजेतक शनि

नवमी 🕖 ७। २६ बजेतक दशमी सायं ६।२८ बजेतक रवि भरणी 😗 ३। ७ बजेतक

एकादशी दिनमें ५।४ बजेतक कृत्तिका " २। २२ बजेतक सोम ।

द्वादशी 🕖 ३ । २० बजेतक मंगल

रोहिणी '' १।१६ बजेतक त्रयोदशी 🗤 १ । १६ बजेतक मृगशिरा " ११।५५ बजेतक बुध

१० 11 ११ " १२ ,,

चतुर्दशी ; , ११ । १ बजेतक गुरु आर्द्रा '' १०। २२ बजेतक अमावस्या 🕠 ८। ३६ बजेतक पुनर्वसु " ८। ४४ बजेतक शुक्र

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य

वार

शनि

रवि

सोम

तिथि

प्रतिपदा प्रातः ६।७ बजेतक

तृतीया रात्रिमें १।७ बजेतक

चतुर्थी 😗 ११। ४ बजेतक

त्रयोदशी " ८ ।४० बजेतक

चतुर्दशी 😗 १०।३२ बजेतक

पूर्णिमा" १२।३३ बजेतक । शुक्र

पंचमी 꺄 ९। ५ बजेतक मंगल पु०फा० " २। ४४ बजेतक उ०फा० 🗤 १। ५० बजेतक बुध

गुरु हस्त 🗤 १। १३ बजेतक

षष्ठी 😗 ७। २८ बजेतक सप्तमी सायं ६।१२ बजेतक

चित्रा 🦙 १। ४ बजेतक शुक्र

शनि

स्वाती <equation-block> १। २२ बजेतक

रवि

नवमी 꺄 ५। २ बजेतक

अष्टमी " ५ । १२ बजेतक

बुध

गुरु

Hinduism Discord Server https://dsc

अष्टमी 🧦 ५। २३ बजेतक

विशाखा 11२। १० बजेतक

सोम

अनुराधा " ३। ३१ बजेतक

एकादशी <table-cell-rows> ५ । ५६ बजेतक

मंगल ज्येष्ठा सायं ५ । १७ बजेतक द्वादशी रात्रिमें ७।५ बजेतक

मूल रात्रिमें ७। २९ बजेतक २५ " पृ०षा० "९।५६ बजेतक २६ " उ०षा० 😗 १२ । ३३ बजेतक २७ "

संख्या ६] कपान्भात कृपानुभूति मन्त्रकी अद्भुत शक्तिका प्रत्यक्ष चमत्कार मन्त्रमें अद्भृत शक्ति होती है। मन्त्र बीजरूपमें एक और कारण बचपनसे ही मेरे स्वप्नमें सर्पका आना होते हैं, जिनमें वृक्ष-जैसा विशाल आकार छुपा रहता था। मैं कभी नींदमें 'साँप-साँप' चिल्लाता था, कभी साँप है, जो अनेक मनोवांछित फलोंको प्रदान करनेवाले होते मुझे डस रहे हैं तो कभी जाते हुए दिखायी दे रहे हैं। ऐसा हैं। ऐसा ही एक मन्त्र है, जिसके प्रभावसे पूर्वजन्मके हमेशा होता रहा। कभी ऐसी रात नहीं जाती थी; जिसमें कर्म-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त हुई है। घटना इस प्रकार है— मुझे वे दिखायी न दें, हर रात्रिमें साँप स्वप्नमें आते थे। बात मध्यप्रदेशके अशोकनगर जिलेके ग्राम सोवतकी मैं अभी वर्तमानमें मध्यप्रदेशके ही नरसिंहपुर है। मेरे पिताजीके छोटे भाई (मेरे चाचाजी)-की उम्र जिलेमें पदस्थ हूँ। एक दिन नरसिंहपुरके ही एक लगभग १६ वर्ष थी, एक दिन वे अपने मित्रोंके साथ प्रसिद्ध विद्वान् महापुरुष श्री दुबेजीसे मेरी भेंट हुई। इमलीके वृक्षपर इमली खाने चढ़े हुए थे, उसी समय सर्पने यह घटना मेरे द्वारा उन महापुरुषको सुनायी गयी, उनके हाथके अँगूठेमें डस लिया। जैसे ही सभी मित्रोंने तब उन्होंने कहा स्वप्नमें प्रतिदिन सर्पका आना ठीक देखा तो इस घटनाको देखकर घबडा गये और उनको घर नहीं होता। इस बातसे तुम्हारा पूर्व जन्मोंमें सर्पोंसे ले आये। वे बहुत धार्मिक प्रवृत्तिके थे, अत: उन्होंने विरोध होना प्रतीत हो रहा है या पूर्व जन्मोंसे सर्पोंका मन्दिरमें जानेके लिये कहा, वहीं बैठे-बैठे भगवान्का कुछ सम्बन्ध शेष रहनेके कारण वे इस जन्ममें भी नाम जपते रहे; क्योंकि विष बहुत अधिक फैल चुका था, तुमको स्वप्नमें सता रहे हैं। मेरे द्वारा इसके निवारणहेत् शरीर नीला पड़ चुका था, कुछ समयमें ही प्राण निकलने उन महापुरुषसे निवेदन किया गया कि इससे कैसे वाले थे, इसलिये इलाज करानेसे मना कर दिया। फिर भी मुक्ति मिले? तब उन्होंने मुझे एक नागमन्त्र दिया, अनेक वैद्योंने झाडा-फूँकी इलाज किया, लेकिन बचानेमें जिसमें नौ नागोंका नाम था और कहा कि तुम इस सफल नहीं हो सके। इस घटनाके कुछ समय बाद हमारे मन्त्रको प्रतिदिन पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धाभावसे जप घरपर कोई अज्ञात संन्यासी आये, जो पहले कभी नहीं करते रहना, कुछ समयमें सर्पके स्वप्न आना बन्द आये थे। उन्होंने कहा कि तुम सभी इतने दुखी क्यों हो? हो जायँगे। इतनेमें मेरे दादाजी रोने लगे और पुत्र-मृत्युका कारण वह मन्त्र इस प्रकार है— बताया। संन्यासीने कहा तुम चिन्ता न करो, तुम्हारा मरा अनन्तं वासुिकं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्। हुआ लड़का पुन: इसी घरमें तुम्हारे बड़े बेटेकी पत्नीसे शंखपालं धार्तराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा॥ १॥ जन्म लेनेवाला है। कुछ ही महीने बाद मेरा जन्म हो जाता एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम्। है, लेकिन इस बातको सभी लोग भूल जाते हैं। मैं जब सायंकाले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः॥ २॥

लगभग १०-११ वर्षका हो गया था, उस समय गाँवके कई लोग मुझे देखकर कहने लगे कि तुम अपने चाचाजीके जैसे लगते हो, उन्हींके जैसे सभी कार्य भी करते हो, लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता था। गाँवके ही एक सुरदासजी (अन्धे व्यक्ति) मेरी आवाजको सुनकर कहा करते थे कि तुम्हारी आवाज हरनाम चाचाजी-जैसी ही लगती है। तब मुझे विश्वास हुआ कि अन्धेको आवाज सुननेका अनुभव सही होता है; क्योंकि उन्होंने उनको

देखा नहीं बल्कि आवाज सुनी थी। इसका सबसे बड़ा

तस्मै विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेतु॥ ३॥ इस मन्त्रके प्रभावसे प्रथम दिनसे ही सर्पींके स्वप्न

आना बन्द हो गये। जीवनमें मैंने ऐसा चमत्कार पहली बार देखा, जो अद्भुत, आश्चर्यजनक एवं विस्मयकारी था। इस मन्त्रके निरन्तर जपसे आजतक मुझे स्वप्नमें

सर्प नहीं दिखे। मित्रो! मन्त्रोंकी महिमा निराली होती है। यह मैं समझ चुका हूँ। मन्त्रोंके प्रभावसे मनुष्य अपने दु:खों (आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक)-से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।—डॉ॰ राजकुमार रघुवंशी

पढ़ो, समझो और करो आदर्श मित्र (२) गरीब महिलाकी ईमानदारी

गया।

पुनीत वाराणसीवासी हिन्दी-साहित्यके युगप्रवर्तक 'दूजो हरिचन्द' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खड्गविलास-प्रेसके घटना इस प्रकार है-मुझे कुछ प्लास्टिकके डिब्बों तथा स्टीलके बर्तनोंकी खरीदारी करनी थी और

संस्थापक, रेपुरानिवासी बाबू श्रीरामदीनसिंहजीके परम मित्र थे। भारतेन्दुजी बडे उदार थे, उनकी उदारताकी

अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अपने फक्कड स्वभावकी वजहसे वे प्राय: ऋणग्रस्त हो जाते थे। उनका सदा ही

मुक्तहस्त रहता था। इसमें उनकी सारी सम्पत्ति समाप्त

हो गयी; बल्कि डेढ लाख रुपयोंका ऋण एक सज्जनका रह गया, जिसकी चर्चा उन्होंने अपने भाई-भतीजों या

दौहित्रसे भी नहीं की थी। एक दिन उन्होंने अपने अभिन्न मित्र बाबू रामदीन सिंहको बुलाकर उनसे सारी बातें बतायीं और कहा कि

'जिनके रुपये हैं, वे सज्जन कभी मुझसे माँगने नहीं आये। इस कारण मुझे इस ऋणके न चुकानेका और भी

बडा दु:ख है।' भारतेन्दुके फक्कड़ स्वभावसे परिचित बाबूसाहबने तुरंत कहा—'अच्छा, तो यह ऋण चुकाना मेरे जिम्मे

रहा। आप इसकी तनिक भी चिन्ता न करें। इस ओरसे बिल्कुल निश्चिन्त रहकर भगवत्-स्मरण करें।' बाबू रामदीनसिंहकी डेढ लाख रुपयेका ऋण चुका

देनेकी बात सुनकर लाखोंकी सम्पत्ति लुटा देनेवाले भारतेन्द्रके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। इसी दशामें उन्होंने कागजका एक टुकड़ा बाबू रामदीनसिंहके हाथोंमें दिया,

जिसपर लिखा था-'मेरी सारी पुस्तकों (१७५)-के प्रकाशनका

सर्वाधिकार खड्गविलास प्रेसको ही है।' बाबू रामदीनसिंहने उसे पढ़ा और तुरंत फाड़कर उन्हींके सामने फेंक दिया और कहा—'यह तो मित्रता निभाना नहीं हुआ, व्यापार हुआ।'

प्रकारकी नि:स्वार्थ मित्रता!

लगती ।

ये दोनों आदर्श मित्र धन्य थे। धन्य है इस

परेशानीकी वजहसे उसकी भाषा स्पष्ट समझ नहीं आ रही थी... लेकिन जो कुछ मैं समझ पाया उसके अनुसार ऐसा लगा कि महिलाने अपना सामान खरीदा और

इसके लिये मैं अपने पौत्रके साथ सोनिया विहार-स्थित

मार्केटमें एक दुकानपर गया, जहाँपर अष्टमी, नवमीकी

वहजसे काफी भीड़ थी। दुकानदारको मैंने अपना सामान नोट कराया तो उसने कहा कि आपको आधा घंटे

प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मैं दुकानमें एक तरफ खड़ा हो

दो-चार मिनट अपनी भाषामें झगड़ती और फिर एक

तरफ बैठकर रोने लगती। ऐसा तीन-चार बार हुआ।

दुकानदारको कोई परवाह नहीं थी। लेकिन उस महिलाके

आँसू देखकर मेरी व्याकुलता बढती गयी और एक समय

ऐसा आया कि मैं अपने आपको रोक नहीं पाया और

उससे जानना चाहा कि आखिर हुआ क्या है?

तभी मेरी दुष्टि एक महिलापर पडी, जो दुकानदारसे

भुगतान करते समय उसने दुकानदारको एककी जगह ५०० रुपयेके दो नोट गलतीसे दे दिये और अब वह

५०० रुपयेका एक नोट वापस लेना चाहती है। दुकानदार इस बातको कतई माननेको तैयार नहीं था और

बार-बार कह रहा था कि एक नोट तुमसे कहीं गिर गया

होगा। महिला कुछ बोलती और फिर बैठकर रोने वेशभूषासे महिला गरीब परिवारकी लग रही थी।

िभाग ९२

लेकिन उसकी दृढ़ता तथा आँसू उसकी ईमानदारीकी

गवाही दे रहे थे। मुझे उसकी सहायता करनेकी इच्छा हुई और मैंने ५०० रुपयेका एक नोट निकालकर उसको

देना चाहा तो वह और जोरसे रोने लगी। उसने उस नोटको काफी प्रयत्न करनेके पश्चात् भी मुझसे नहीं ('पद्मभूषण' आचार्य श्रीशिवपूजनसहायके कथनके आधारपर)

संख्या ६] पढ़ो, समझं क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	ो और करो क्रम्यम्बद्धम्
—————————————————————————————————————	सत्संगमें तल्लीन रहता था।
लगता था कि वह दुकानदारसे ही लेना चाहती है,	एक दिन उसने सेठसे जगन्नाथपुरी जानेकी इच्छा
लेकिन दुकानदारको उसकी कोई परवाह नहीं थी।	व्यक्त की और सेठजीसे एक माहका अवकाश माँगा।
मेरा सामान अभीतक पैक नहीं हुआ था। पन्द्रह	सेठजीने उसे छुट्टी देते हुए कहा—'भाई, मैं तो हूँ संसारी
मिनट और बीत गये। मैंने एक तरकीब निकाली और	आदमी, हमेशा दुकानके काम-धन्धेमें लगा रहता हूँ।
चुपकेसे ५०० रुपयेका नोट मैंने दुकानदारको पकड़ा	इसी कारण तीर्थयात्रापर नहीं जा पाता। प्रभु जगन्नाथ
दिया और इशारों–इशारोंमें उसको देनेके लिये कह	मुझे क्षमा करेंगे। तुम जा ही रहे हो तो यह ५० का
दिया। थोड़ी देर बाद दुकानदारने वह नोट उस महिलाको	पत्ता मेरी ओरसे जगन्नाथ स्वामीको भेंट कर देना।'
दिया तो उसने उसे लेनेसे मना करते हुए धीरे-धीरे	भगत सेठजीसे ५० का पत्ता लेकर जगन्नाथपुरीको
बताया कि ५०० रुपये नहीं, केवल १०० रुपये चाहिये।	चल दिया। कई दिनकी पैदल यात्रा करनेके पश्चात्
एक घंटेके घटनाक्रमके पश्चात् पता चला कि	वह जगन्नाथधाम पहुँच गया। मन्दिरकी ओर प्रस्थान
उस महिलाने २०० रुपयेका सामान लेकर ५००	करते समय मार्गमें देखा कि कुछ लोग प्रभुका कीर्तन
रुपयेका नोट दिया, जिसमें दुकानदारने गलतीसे ३००	बड़े आनन्दमें कर रहे थे। सभीके नेत्रोंसे अश्रुधारा
के स्थानपर उस महिलाको मात्र २०० रुपये वापस	बह रही थी। जोर-जोरसे हरिनामके जयकारोंसे वातावरण
किये थे। अब दुकानदारको भी धीरे-धीरे याद आ	गूँज रहा था। वह व्यक्ति भी प्रभुनामका रसास्वादन
रहा था और उसने उस महिलाको एक १०० रुपयेका	ले रहा था।
नोट दे दिया, जिसे लेकर वह आँसू पोंछती हुई	फिर उस व्यक्तिने देखा भूखके कारण कुछ
अपने घर चली गयी। मैं उससे बस इतना पूछ पाया	सन्तोंका स्वर धीमा पड़ गया था। सेठजीके गुमाश्तेने
कि उसके पति क्या करते हैं? उसने मुसकराते हुए	सोचा क्यों न सेठके धनसे इनको अन्न-जल प्रदान कर
उत्तर दिया—'अखबार बेचते हैं।'	दूँ। उसने इसी पचास रुपयेमें-से अड़तालीस रुपयेसे
ऐसी देवीको मेरा प्रणाम है, जिसे ५०० रुपयेके	भोजनकी व्यवस्था कर दी, पुन: दो रुपये स्वामी
नोटकी जगह अपनी मेहनतका १०० रुपयेका नोट	जगन्नाथजीके चरणोंपर अर्पण कर दिये और मन-ही-
अधिक मूल्यवान् लगा।	मन निश्चय किया कि जब सेठजी पूछेंगे तो मैं कहूँगा
दुकानदारने मेरा नोट धन्यवादके साथ वापस किया	कि पैसे मैंने जगन्नाथस्वामीजीको अर्पण कर दिये हैं।
और काफी कोशिश करनेके पश्चात् भी महिलाको दिये	यह झूठ भी नहीं होगा और सेठका काम भी हो
१०० रुपये भी नहीं लिये, जिन्हें मैं देना चाहता था।	जायगा।
—एम०एल० शर्मा	भक्तने स्वामी जगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश किया।
(ξ)	प्रभुकी छवि निहारते हुए अपने हृदयमें उनको विराजमान
प्रभु जगन्नाथजीसे भेंट	किया और मुखसे बोला—स्वामीजी! यह दो रुपये
प्राचीन समयकी बात है। एक सेठके पास एक	सेठके नामके आपको अर्पण करता हूँ, कृपया सेठजीकी
व्यक्ति नौकरी करता था। वह व्यक्ति सेठजीका	भेंट स्वीकार करें।
विश्वासपात्र था, जो भी जिम्मेदारीका कार्य होता	अगली रात सेठको स्वप्नमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शन
सेठजी उसीको वह कार्य सौंपते थे। वह व्यक्ति प्रभु	हुए, उन्होंने सेठको आशीर्वाद दिया और बोले—मैंने
जगन्नाथजीका महान् उपासक था। सदा प्रभुके भजन,	तेरे अड़तालीस रुपये सहर्ष स्वीकार किये। यह कहकर

भाग ९२ महाप्रभु अन्तर्धान हो गये। एक दिन हमारे प्रिन्सिपल महोदयसे कहा कि 'मुझे एक जागनेपर सोचा मेरा नौकर तो ईमानदार है, पर आवश्यक अर्थसम्बन्धी लेख लिखना है, आप अपने इसने दो रुपये क्यों मार लिये हैं? उसको सम्भवत: दो किसी होशियार छात्रको भेज दें, मैं जो बोलूँ उसे वह रुपयोंकी आवश्यकता पड़ी होगी। कुछ समय पश्चात् ठीक-ठीक लिखता रहे।' प्रिन्सिपल महोदयने इस कार्यके भक्त लौटकर आया और सेठसे बोला आपका धन लिये मुझे चुना और कहा कि 'आज सन्ध्यासमय पाँच प्रभुको अर्पण कर दिया है। सेठने कहा—भाई! वास्तवमें बजेके लगभग लोकमान्य तिलकजीके पास चले जाना तूने केवल ४८ रुपये ही प्रभुको चढ़ाये हैं, दो रुपयोंका और वे जो बोलें उसे ठीक-ठीक लिखते रहना।' मैंने क्या किया, इसका कारण बता। तब नौकरने सारी बात इसे अपना अहोभाग्य समझा और सहर्ष तिलकजीके सेठको सच-सच बता दी कि मैंने तो ४८ रुपयेका भोजन चरणोंमें पहुँचा। अकस्मात् उस समय तिलकजीसे मिलने भुखे सन्तोंको खिला दिया था और केवल दो रुपये कुछ महानुभाव आ गये और लेख लिखानेके लिये उनके स्वामी जगन्नाथजीके चरणोंमें अर्पण कर दिये थे। पास समय नहीं रहा। तिलकजी इससे खिन्न थे। मैंने कहा, 'आप मुझे समझा दीजिये कि आप क्या लिखाना सेठ सारी बात समझ गया और नौकरके चरणोंमें प्रणाम करते हुए बोला—तू धन्य है, तेरे कारण घर बैठे चाहते हैं। एक स्थूल-सी रूप-रेखा दे दीजिये। मैं स्वयं मुझे स्वामी जगन्नाथजीके दर्शन हो गये। प्रभुको धनकी लेख तैयार कर लाऊँगा।' इसपर तिलकजी मुसकराये, आवश्यकता बिलकुल नहीं, वे तो श्रद्धाके भूखे हैं। जो पर मेरा मन रखनेके लिये उन्होंने अपना विषय और मुद्दे धन भूखे लोगोंके उदरपूर्तिके काम आये, वही सच्चा समझा दिये। अगले दिन मैं वह लेख तैयार करके उनकी सौदा है। सेवामें पहुँचा, जिसे पढकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और आजके बाद तू मेरा नौकर नहीं, मेरे व्यापारका मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए बोले—'जाओ, हमने तुम्हें हिस्सेदार है। तू काम भी कर और प्रभुका भजन भी कर। आशीर्वाद दिया, तुम एक दिन भारतसरकारके फाइनेन्स मेम्बर बनोगे।' तिलकजीका यह आशीर्वाद मुझे बराबर —इन्द्रराज बोहरा स्मरण रहा: क्योंकि मैं जानता था कि महात्माओंका (8) बड़ोंका आशीर्वाद आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता और जब मैं रिजर्व सर चिन्तामणि देशमुख भारतके माने हुए अर्थशास्त्री बैंकका गवर्नर बन गया तो मैंने समझा कि अब लोकमान्यका थे। ब्रिटिश-राज्यकालमें वे रिजर्व बैंकके गवर्नर थे। आशीर्वाद पूरा हो गया; क्योंकि रिजर्व बैंकके गवर्नर इनसे पहले अर्थविभागके इतने ऊँचे पदपर किसी भी और फाइनेन्स मेम्बरके पदमें कोई ऐसा विशेष अन्तर भारतीयकी नियुक्ति नहीं हुई थी। देश स्वतन्त्र होनेपर नहीं है और इसके बाद मैं इस आशीर्वादकी बात श्रीजान मथाई और सर षड्मुखम् चेट्टीके बाद वे केन्द्रीय बिलकुल भूल गया। परंतु अब भारतसरकारका फाइनेन्स-मेम्बर (अर्थसचिव) बन जानेके बाद मुझे फिर तिलकजीका सरकारमें फाइनेन्स मेम्बर (अर्थसचिव) बनाये गये। मेरठके नागरिकोंद्वारा आयोजित एक स्वागत-समारोहमें आशीर्वाद याद आ गया कि यह मेरी भूल थी कि रिजर्व बोलते हुए आपने अपने जीवनकी एक रोचक घटनाका बैंककी गवर्नरीपर ही मैंने उनके आशीर्वादको पूरा हुआ वर्णन किया। समझ लिया था। महात्माओंका आशीर्वाद लगभग ही श्रीदेशमुखजीने कहा कि जब मैं फर्ग्यूसन कालेज सत्य नहीं होता, वह तो अक्षरश: सत्य होता है। प्नाका विद्यार्थी और तब लोकमान्य बाल गंगाधर तिलुक वेharma | MADE WITH LOVE BY AVIRARIE के तिलुक वे

मनन करने योग्य संख्या ६] मनन करने योग्य पाण्डित्यका अभिमान उचित नहीं

श्रीगौडेश्वरसम्प्रदायके विश्वविख्यात आचार्य श्रीरूप श्रीजीव यमुनाजीसे जल लेकर आये और उन्होंने

गुरुदेवके चरणकमलोंमें प्रणाम किया। श्रीरूप गोस्वामीजीने

गोस्वामी महाशय श्रीवृन्दावनमें एक निर्जन स्थानमें वृक्षकी छायामें बैठे ग्रन्थ लिख रहे थे। गरमीके दिन थे। अत:

उनके भतीजे और शिष्य महान् विद्वान् युवक श्रीजीव

गोस्वामी एक ओर बैठे श्रीगुरुदेवके पसीनेसे भरे बदनपर

पंखा झल रहे थे। श्रीरूप गोस्वामीके आदर्श स्वभाव-

सौन्दर्य और माधुर्यने सभीका चित्त खींच लिया था। उनके

दर्शनार्थ आनेवाले लोगोंका ताँता बँधा रहता था। एक

बहुत बड़े विद्वान् उनके दर्शनार्थ आये और श्रीरूपजीके द्वारा रचित 'भक्तिरसामृत' ग्रन्थके मंगलाचरणका श्लोक पढ़कर बोले, 'इसमें कुछ भूल है, मैं उसका संशोधन कर

दुँगा।' इतना कहकर वे श्रीयमुना-स्नानको चले गये। श्रीजीवको एक अपरिचित आगन्तुकके द्वारा गुरुदेवके

श्लोकमें भूल निकालनेकी बात सुनकर कुछ क्षोभ हो गया। उनसे यह बात सही नहीं गयी। वे भी उसी समय

जल लानेके निमित्तसे यमुनातटपर जा पहुँचे। वहाँ वे पण्डितजी थे ही। उनसे मंगलाचरणके श्लोककी चर्चा छेड दी और पण्डितजीसे उनके संदेहकी सारी बातें भलीभाँति

पूछकर अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ताके द्वारा उनके समस्त संदेहोंको दूर कर दिया। उन्हें मानना पड़ा कि श्लोकमें भूल नहीं थी। इस शास्त्रार्थके प्रसंगमें अनेकों शास्त्रोंपर विचार हुआ था

और इसमें श्रीजीव गोस्वामीके एक भी वाक्यका खण्डन पण्डितजी नहीं कर सके। शास्त्रार्थमें श्रीजीवकी विलक्षण प्रतिभा देखकर पण्डितजी बहुत प्रभावित हुए और श्रीमदुरूप

गोस्वामीके पास आकर सरल और निर्मत्सरभावसे उन्होंने

कहा कि 'आपके पास जो युवक थे, मैं उल्लासके साथ यह जाननेको आया हूँ कि वे कौन हैं?' श्रीरूप गोस्वामीने

दिन देशसे आया है।'

कहा कि 'वह मेरा भतीजा है और शिष्य भी, अभी उस

यह सुनकर उन्होंने सब वृत्तान्त बतलाया और श्रीजीवकी विद्वत्ताकी प्रशंसा करते हुए श्रीरूप गोस्वामीके

अत्यन्त मृदु वचनोंमें श्रीजीवसे कहा—'भैया! भट्टजी

कृपा करके मेरे समीप आये थे और उन्होंने मेरे हितके लिये ही ग्रन्थके संशोधनकी बात कही थी। यह छोटी-सी बात तुम सहन नहीं कर सके। इसलिये तुम तुरंत पूर्व

देशको चले जाओ। मन स्थिर होनेपर वृन्दावन लौट आना।' व्रज-रसके सच्चे रिसक, व्रजभावमें पारंगत श्रीरूपके स्वभावमें परम दैन्य, आत्यन्तिक सहिष्णुता, नित्य श्रीकृष्णगत

चित्त होनेके कारण अन्यान्य लौकिक व्यवहारोंकी ओर उपेक्षा थी। भट्टजीने श्रीरूप गोस्वामीजीकी भूल बतायी

थी, इससे उन्हें क्षोभ होना तो दूर रहा, उन्हें लगा कि सचमुच मेरी कोई भूल होगी, भट्टजी उसे सुधार देंगे। श्रीजीव गोस्वामीने शास्त्रार्थमें पण्डितजीको हरा दिया,

इससे श्रीरूप गोस्वामीको सुख नहीं मिला। उन्हें संकोच हुआ और अपने प्रियतम शिष्यपर शासन करना पड़ा। वे श्रीजीव गोस्वामीके पाण्डित्यको जानते थे, पर श्रीजीवमें जरा भी पाण्डित्यका अभिमान न रह जाय, पूर्ण दैन्य आ

जाय-वे यह चाहते थे और इसीसे उन्होंने श्रीजीवको चले जानेकी आज्ञा दी। यह उनका महान् शिष्यवात्सल्य था और इसी रूपमें बिना किसी क्षोभके अत्यन्त अनुकूलभावसे

श्रीजीवने गुरुदेवकी इस आज्ञाको शिरोधार्य किया। वे

बिना एक शब्द कहे तुरंत पूर्वकी ओर चल दिये तथा यमुनाके नन्दघाटपर जाकर निर्जन स्थानमें वास करने लगे। वे कभी कुछ खा लेते, कभी उपवास करते और

भजनमें लगे रहते। श्रीसनातन गोस्वामीद्वारा उनकी यह दशा जानकर श्रीरूपगोस्वामी करुणासे द्रवित हो उठे और उन्होंने पुन: जीवगोस्वामीको अपने पास बुला लिया तथा

समझाया कि भैया! सभीके हृदयमें परमात्मा श्रीकृष्णका वास है, अत: इस बातकी विशेष सावधानी रखनी चाहिये

द्वारा समादर प्राप्त करके वे लौट गये। इसी समय कि प्रभुप्रदत्त पाण्डित्यसे किसीके मनको कष्ट न पहुँचे।

कल्याणका आगामी ९३वें वर्ष (सन् २०१९ ई०)-का विशेषाङ्क

'श्रीराधामाधव-अङ्क'

जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीराधा हैं और जो श्रीराधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधामाधवके रूपमें एक

ही ज्योति दो प्रकारसे प्रकट है।

सिच्चन्मयी जगदम्बा श्रीराधा सिच्चदानन्दघन परमात्मप्रभु श्रीमाधवकी चिद्विलासरूपा आह्लादिनी शक्ति

हैं। श्रीराधिकाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है और जहाँ

प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दसागरका घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति

श्रीराधारानी हैं। श्रीराधारानी श्रीकृष्णकी जीवनरूपा हैं और श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके जीवन हैं। श्रीराधारानी

महाभावस्वरूपा हैं और प्रियतम श्रीकृष्णको आह्लाद प्रदान करती रहती हैं। उपासना-जगत्में भक्तोंकी

अभिलाषापूर्तिके लिये श्रीराधामाधवका युगल अवतरण हुआ है। नित्य गोलोक भगवान् माधवका आनन्दधाम है तो शाश्वत वृन्दावन भगवती राधाकी नित्य क्रीडास्थली है। जैसे भगवान्का अवतरण होता है, वैसे ही

नित्यधामका भी इस प्राकृत जगत्में लीलाके लिये, भक्तोंका कल्याण करनेके लिये अवतरण हुआ करता है। भगवान्का नाम, रूप, लीला और धाम—ये चारों पूर्णब्रह्मस्वरूप हैं। जैसे भगवन्नामकी महिमा है, वैसे ही उनके विग्रहकी महिमा है, जैसे लीलाका माहात्म्य है, वैसे ही धामका भी माहात्म्य है।

श्रीपार्वतीपरमेश्वराय पद भी बनता है। इसी रूपमें श्रीराधामाधवाभ्याम् पद भी बनता है और श्रीराधामाधवाय पद भी बनता है।

समग्रता ही लीला है और लीलाका निगृढ़ रहस्य ही तत्त्व है। एक ही अद्वितीय परम नित्यानन्द तत्त्व नित्य अखण्ड

रहकर भी आस्वाद्य और आस्वादकरूपसे दो नामोंमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है—एक है व्रजनन्दन श्रीमाधव

और दूसरा है वृषभानुद्लारी श्रीराधा। श्रीकृष्ण रसमय हैं और श्रीराधारानी हैं भावमय।

हैं, इन सभी भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्ततम प्रकाश है, वह श्रीराधाभाव है और राधा हैं

श्रीकृष्णका आनन्द। भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने नित्य सौन्दर्य-माधुर्य रसका समास्वादन करनेके लिये स्वयं

अपनी ह्लादिनीशक्तिको श्रीराधास्वरूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं।

अधिकारी हैं और जिनपर राधेश्यामकी विशेष कृपा होती है। श्रीराधामाधवका परम अवलम्बन एवं पूर्ण आश्रय लेकर भक्तोंकी इन्हीं सब माधुर्यपूर्ण रसधाराका

यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव ज्योतिर्द्विधा भिन्नं राधामाधवरूपकम्॥

भगवान्की एकलरूपमें अथवा युगलरूपमें अर्थात् अभेदोपासना और भेदोपासना—दोनों ही उपासनाएँ

तत्त्व और लीला एक ही स्वरूपकी दो दिशाएँ हैं, तत्त्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें परिस्फुट है, तत्त्वकी

रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये सभी आह्लादिनी शक्तिके ही भाव

भक्तोंके मानसपटलके ये भाव श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रीति प्रदान करनेवाले हैं तथा उनके श्रीचरणोंमें

प्रेम एवं लौ लगानेवाले हैं। श्रीराधामाधवका मधुरातिमधुर लीलारसप्रवाह अनन्तरूपसे चलता रहता है। श्रीराधामाधवकी निगृढ़ लीलाओंका—अन्तरंग लीलाओंका उन्हीं भक्तोंको दर्शन होता है, जो उसके विशेष

रुचि-भेदके रूपमें भक्तिजगत्में अनादि कालसे चली आयी हैं, इसीलिये श्रीसीतारामाभ्याम् पद भी बनता है और **श्रीसीतारामाय** पद भी बनता है। ऐसे ही **श्रीपार्वतीपरमेश्वराभ्याम्** पद भी बनता है और

संख्या ६] कल्याणका आगामी ९३वें वर्ष (सन् २०१९	
परिकलन इस 'श्रीराधामाधव' विशेषाङ्कमें करनेका र्वि	•
इसमें मुख्य रूपसे राधामाधव-तत्त्वविचार, राधामाधव	`
राधामाधव, श्यामसुन्दर एवं राधारानीकी अन्तरंग एवं	
तथा राधामाधवके भक्तवृन्द आदि बातोंका समावेश व	-17
तो बहुत पहलेसे मानस-पटलपर था, भक्तोंके सुझाव	•••
बार आग्रह भी होता आया, किंतु बीचमें मूल पुराणोंके	
जिसमें विगत वर्षोंमें लिङ्गपुराण, देवीभागवत तथा शि	
हुए। अब इस बार परमात्मप्रभुकी कृपासे श्रीराधामाध	व-अङ्क के प्रकाशनकी विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है।
सभी सन्त-महात्माओं, लेखक महानुभावों तथा	भक्तजगत्के प्रेमी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इस
विशेषाङ्क्रके लिये अपना आलेख, भगवत्कृपाके अनु	भिव आदि सामग्री ३१ अगस्त २०१८ ई० तक
भेजनेकी कृपा करें। यहाँ साथमें दिग्दर्शनके लिये वि	षयोंकी एक संक्षिप्त सूची भी दी जा रही है, इन
विषयोंपर अथवा अपनी रुचिके अनुसार सम्बद्ध अङ्कृते	के लिये यथाशीघ्र सामग्री प्रेषित करनेकी कृपा करनी
चाहिये। रोचक, कथात्मक, लीलात्मक तथा भक्तिरसकी	सामग्रीको प्राथमिकता दी जा सकेगी।
	विनीत—
	राधेश्याम खेमका
	(सम्पादक)
विषय-	-सूची
[क] श्रीराधामाधव-तत्त्वदर्शन	१४- संधिनी, संवित् और आह्लादिनी शक्तियाँ।
१- श्रीराधा-माधव पदोंकी निरुक्ति, निर्वचन एवं अर्थ-	[ख] श्रीराधामाधवकी माधुर्य एवं
विस्तार।	ऐश्वर्यमयी लीलाएँ
२- श्रीराधाका तात्त्विकस्वरूप।	१– श्रीराधाजीका उदात्त चरित।
३- श्रीमाधवकी तात्त्विक मीमांसा।	२- श्रीमाधवका जीवन-दर्शन।
४- श्रीराधामाधवका यथार्थस्वरूप।	३- गोपीभाव और श्रीराधाभाव।
५- श्रीराधामाधवयुगल-तत्त्वकी अभिन्नता।	४- मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, व्रज तथा द्वारकाधामकी
६- श्रीराधामाधवके तत्त्वस्वरूपका रहस्य।	लीलाएँ।
७- श्रीराधाके प्रति भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्वोपदेश।	५- सखीभाव एवं मंजरीभाव।
८- श्रीराधामाधवकी एकरूपता।	६- श्रीराधाजीके विवाहकी अद्भुत झाँकी।
९- प्रेमतत्त्वके विविध स्तर [रति, प्रेम, स्नेह, मान,	७– श्रीराधिकाजीकी सहचरी—ललिता आदि अष्टसखियाँ
प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव]।	८- श्रीराधामाधवकी अष्टयाम लीला।
१०- श्रीराधामाधवके तत्त्वस्वरूपका रहस्य।	९- श्रीराधामाधव और गोपीश्वर महादेवकी लीलाकथा।
११- श्रीराधामाधवस्वरूप-दिग्दर्शन।	१०- श्रीश्यामसुन्दरके लीलासहचर और उनके नित्य
१२- सौन्दर्यमहोदधि श्रीराधामाधव।	सखा।
१३- श्रीराधाजीके महाभावका स्वरूप।	११- श्रीश्यामसुन्दरका वेणुवादन और श्रीराधारानी।

५० कल्ल	प्राण [भाग ९२				
<u> </u>	<u> </u>				
१२- श्रीराधामाधवका गो-प्रेम।	२४- राधामाधवके कृपाकटाक्षकी अनुभूतियाँ।				
१३- महारास-लीला और अन्तरंगशक्ति—श्रीराधा।	[घ] सत्साहित्य एवं विविध सम्प्रदायोंमें				
१४- श्रीमाधवकी अष्टपटरानियाँ और श्रीराधा।	श्रीराधा-माधव				
१५- श्यामसुन्दरकी निकुंजलीला।	१- वेदकी संहिताओंमें युगल-उपासनाके सूक्त।				
१६- महाभाग्यवती गोपियाँ और श्रीराधारानी।	२- उपनिषद्-साहित्यमें श्रीराधामाधवका आध्यात्मिक				
१७- श्रीराधाजीकी विरह-साधना।	स्वरूप।				
[ग] श्रीराधामाधव-उपासना और साधना	३- राधोपनिषद् एवं कृष्णोपनिषद्की मीमांसा।				
१- उपासना एवं साधनाका स्वरूप-निरूपण।	४- श्रीमद्भागवत आदि पुराणों तथा वाल्मीकीय रामायण				
२- भक्ति, उपासना एवं साधना।	एवं महाभारतमें श्रीराधामाधवका स्वरूप-निरूपण।				
३- उपासना एवं भक्तिके विविध भेद।	५- ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीराधामाधवका आख्यान साहित्य।				
४- साधनाकी विभिन्न पद्धतियाँ।	६- श्रीगर्गसंहितामें श्रीराधारानीका विस्तृत दिग्दर्शन।				
५- राधामाधवके विविध ध्यानस्वरूप।	७– अद्वैतवेदान्त और श्रीराधामाधवका परमैक्य।				
६- श्रीराधामाधवकी पंचविध एवं दशविध उपासना।	८- गान्धर्वविद्या और श्रीराधामाधव।				
७- श्रीराधामाधव-उपासनाकी प्राचीनता।	९- संस्कृतसाहित्यकी विविध विधाओंमें श्रीराधामाधवकी				
८- श्रीराधामाधव-भक्ति-परम्पराकी व्यापकता।	मधुर लीलाएँ।				
९- श्रीराधामाधवकी नवधाभक्ति।	१०- तन्त्रागम-साहित्यमें श्रीराधामाधव।				
१०- श्रीराधा एवं माधव नामोंके जप एवं कीर्तनकी	११- वैखानस आगमोंमें श्रीराधामाधवका स्वरूप-निरूपण।				
महिमा।	१२-रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क एवं चैतन्य आदि				
११- श्रीराधा एवं श्रीमाधवके जपनीय विविध मन्त्र।	वैष्णवसम्प्रदायोंमें श्रीराधामाधवकी भक्ति।				
१२- श्रीराधाशतनाम और सहस्रनाम।	१३- श्रीराधास्वामीसम्प्रदाय तथा श्रीराधामाधव।				
१३- श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्र।	१४- हिन्दीसाहित्यमें श्रीराधामाधवका निरूपण एवं				
१४- श्रीराधा-कृष्ण युगलसहस्रनामस्तोत्र।	युगलगीतोंकी परम्परा।				
१५- श्रीराधामाधवके प्राचीन मन्दिर।	१५- अष्टछाप कवियोंका भक्तिदर्शन।				
१६-श्रीराधाकी प्रेमसाधना और उनका अनिर्वचनीय	१६- स्थापत्यकला और मूर्तिकलामें राधामाधवका चित्रांकन।				
स्वरूप।	१७- चित्रकला और श्रीराधामाधव।				
१७- मधुरभावकी उपासना।	१८- प्रादेशिक भाषाओंमें श्रीराधामाधव।				
१८- युगलस्वरूपकी उपासना।	१९- लोकगीत तथा लोककथाओंमें श्रीराधामाधवका वर्णन।				
१९- श्रीराधामाधवका स्तुति-साहित्य।	२०- सन्तवाणियोंमें राधामाधवका गान।				
२०- श्रीराधामाधवके व्रतपर्वोत्सव।	२१-भक्त विल्वमंगलके काव्यमें राधा-माधवतत्त्व।				
२१- श्रीकृष्णजन्माष्टमीका प्राकट्योत्सव।	[ङ] श्रीराधामाधवके प्राचीन एवं अर्वाचीन				
२२- श्रीराधाष्टमी।	भक्तोंकी परम्परा				
२३– कार्तिकमासकी राधादामोदरसपर्या।	[च] श्रीराधामाधव और अध्यात्मदर्शन				
	>				
Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha					
. 55					

,,,,	3,	¢	,,,,	3,	ę, , ,			
41	शक्ति-अङ्क	२००	1113	नरसिंहपुराणम् –सानुवाद	१००			
616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२००	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१५०			
604	साधनाङ्क	२५०	1362	अग्निपुराण—(मूल	२००			
1773	गो-अङ्क	१९०		संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)				
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	३००			
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	१००	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०			
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	42	श्रीहनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०			
43	नारी-अङ्क	२४०	1044	वेद-कथाङ्क (परिशिष्टसहित)	१७५			
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	1361	संक्षिप्त श्रीवाराहपुराण	१२०			
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण	३५०	791	श्रीसूर्याङ्क	१५०			
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	584	संक्षिप्त भविष्यपुराण	१८०			
1183	संक्षिप्त नारदपुराण	२००	586	शिवोपासनाङ्क	१५०			
627	संत-अङ्क	२३०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०			
587	सत्कथा-अङ्क	२००	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०			
636	तीर्थाङ्क	२००	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०			
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१८०	2066	श्रीभक्तमाल	२३०			
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२६५	1189	संक्षिप्त गरुडपुराण	१७५			
789	सं० शिवपुराण	२००	1985	लिङ्गमहापुराण -सटीक	२२०			
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	1592	आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण)	२२५			
572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२२०	1610	(महाभागवत) देवीपुराण सानुवाद	१२०			
517	गर्ग-संहिता	१५०	1184	श्रीकृष्णाङ्क	२००			
1135	श्रीभगवन्नाम-महिमा और		2125	श्रीशिवमहापुराणाङ्क	१४०			
	प्रार्थना-अङ्क	१६०		[हिन्दी भाषानुवाद-I] (पूर्वार्ध)				
1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०	2035	श्रीगङ्गा-अङ्क	१३०			
	பவர்க்	- 25.00	गंगरा	गीय ग्रन्थ				
	ताताजा	ુ ત્યુ ાજ	M NO ~	॥५ ग्रन्थ				
त	<mark>त्त्वचिन्तामणि (ग्रन्थाकार)</mark> —इस	ग्रन्थका	प्रकाशन	पूर्वप्रकाशित अलग-अलग सात भा	गों तथा			
				्. ो एक साथ उपलब्ध करानेके उद्देश्य				
	•			रणके साथ, (कोड 683), पृ०–सं०				
	११८०, (कोड 1650) मूल्य ₹ १५०			,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,	` ` `,			
٠,	• (•		० २०५३ तक प्रकाशित स्वामीजीकी	लगभग			
	साधन-सुधा-सिन्धु (ग्रन्थाकार)—इस ग्रन्थमें वि० सं० २०५३ तक प्रकाशित स्वामीजीकी लगभग							
५० पुस्तकोंका दुर्लभ ग्रन्थाकार संकलन किया गया है। पृष्ठ-सं० १००८, कपड़ेकी मज़बूत जिल्द (कोड 465),								
मूल्य ₹१७०; (कोड 1473), ओड़िआ, मूल्य ₹२००; (कोड 1630), गुजराती, मूल्य ₹१२५								
भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)—छः भागोंमें पूर्वप्रकाशित विभिन्न महत्त्वपूर्ण लेखोंका एक ही जिल्दमें अनुपम								
संग्रह। कपड़ेकी मज़बूत जिल्द तथा आकर्षक लेमिनेटेड आवरणसहित, (कोड 820), मूल्य ₹१३०								

कल्याण' के उपलब्ध विशेषाङ्क

मूल्य ₹

पुस्तक-नाम

कोड

कोड

पुस्तक-नाम

मूल्य ₹



प्र० ति० २१-५-२०१८ रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित रंगीन चित्र-कथाएँ

[२३ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त।]



कोड 869 ₹ १५



कोड 870 ₹ १५



कोड 871 ₹ १५





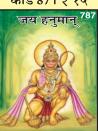
कोड 1016 ₹ २५



कोड 1017 ₹ २५



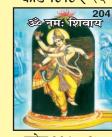
कोड 1116 ₹ २५



कोड 787 ₹ २५



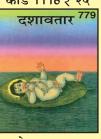
कोड 1343 ₹ २५



कोड 204 ₹ २५



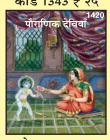
कोड 829 ₹ १५



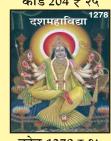
कोड 779 ₹ १५



कोड 1647 ₹ २५



कोड 1420 ₹ १५



कोड 1278 ₹ १५



कोड 1442 ₹ २५



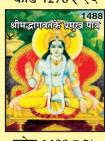
कोड 1794 ₹ २५



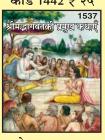
कोड 868 ₹ २५



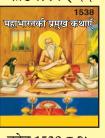
कोड 1443 ₹ २५



कोड 1488 ₹ २५



कोड 1537 ₹ २५



कोड 1538 ₹ २५



कोड 1646 ₹ २५

उपर्युक्त २३ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर पुस्तक मुल्य ₹ ४९५, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त। <mark>टोटल ₹ ४९५ भिजवाकर १ सेट बाल-साहित्य मँगवा</mark> सकते हैं। इसमें विभिन्न विषयोंपर चित्रोंके माध्यमसे बालकोंको सुन्दर एवं व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है। यह योजना ३१ अगस्त २०१८ तकके लिये है।